महिला दिवस पर विशेष
शक्ति का नव-शिखर

बिहार का संधिकाल
सत्ता, संघर्ष व उत्तराधिकार

₹ 30/-

सत्य सदैव

www.satyasadev.com PRGI NO : DELHIN/2017/74560 वर्ष:9, अंक:03, मार्च-2026

निर्भीक, निष्पक्ष एवं निष्ठा के साथ

पशिचम एशिया की बदलती युद्धरेखा

ईरान-इजराइल | पाक-अफगानिस्तान

युद्ध

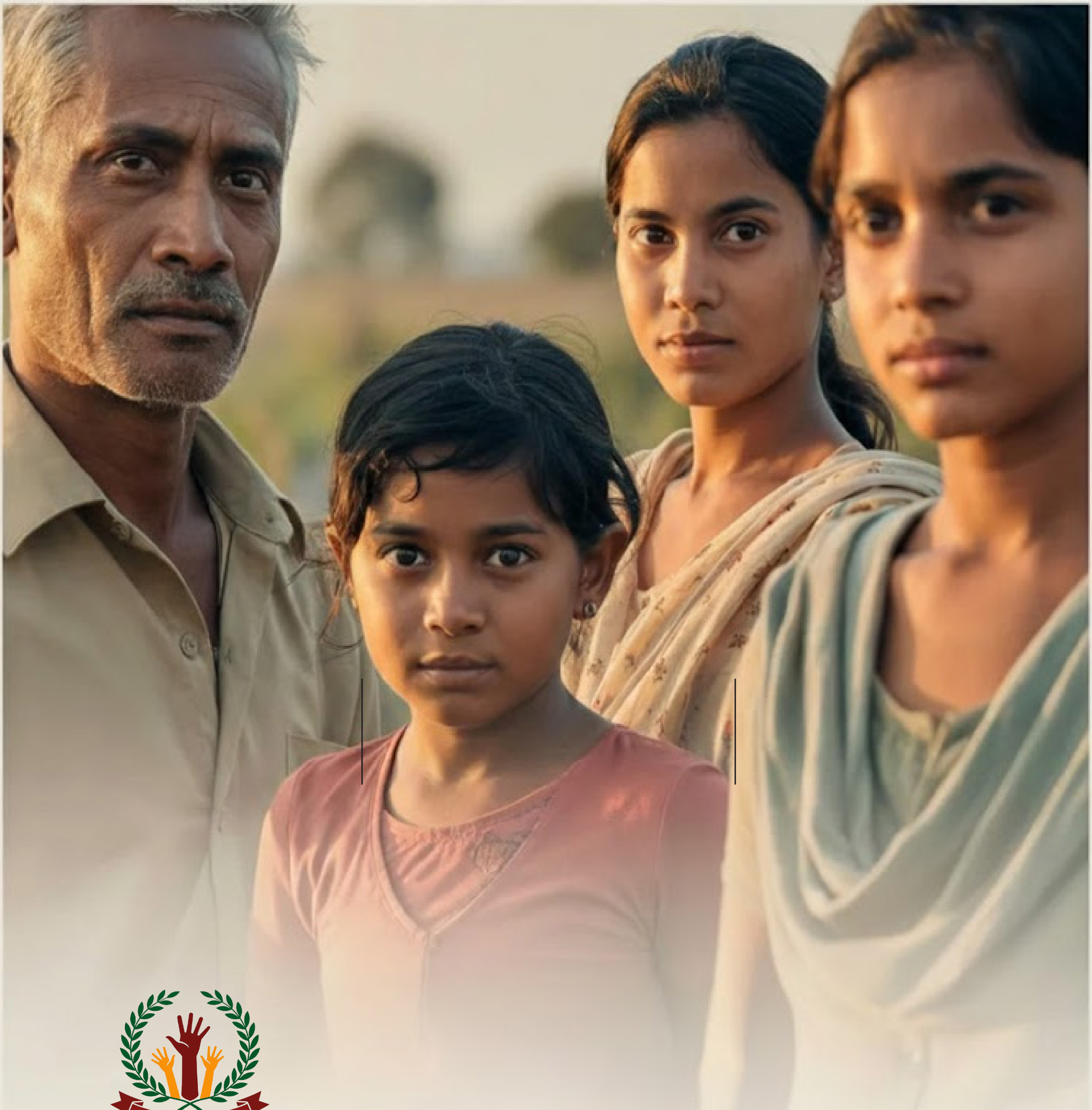

KIRTI TRUST

Compassion • Empowerment • Sustainability

EMPOWERING Lives
BUILDING Futures

CONTACT US

Head Office
M-131 ABL Work Space,
Connaught Place,
New Delhi-110001

Regd. Office
S-505, School Block,
Shakarpur, New
Delhi-110092

Project Office
Village & Post Office Kathura
District Sonipat (Haryana)
PIN- 131301

@kirtitrust
fb.com/kirtitrust
@kirti_trust

www.kirtitrust.org
info@kirtitrust.org

+91-9254-29-3293
+91-9050-29-3293

सत्य सदैव

निर्भीक, निष्पक्ष एवं निष्ठा के साथ

www.satyasadev.com PRGI NO : DELHIN/2017/74560

वर्ष:9, अंक:03, मार्च-2026

संपादक	राकेश कुमार
मुख्य कार्यकारी संपादक	श्रीराजेश
प्रबंध संपादक	शिव कुमार माहेश्वरी
सह-संपादक	प्रो. (डॉ) सतीश चंद्रा
सहायक संपादक	अरूणिमा चंद्रा
उप संपादक	संतु दास, मनोज कुमार
सहायक उप संपादक	विशाल श्योकंद,व्यास तिवारी
विधि संपादक	एडवोकेट राखी शर्मा
कला संपादक	अमर नंदी
मुख्य संवाददाता	प्रवेश शर्मा
जनसंपर्क अधिकारी	संगीता रानी
तकनीक व साइबर हेड	अनुज कुमार सिंह
प्रसार प्रबंधक	नीतिश भारद्वाज
विपणन प्रबंधक	संदीप जिंदल
चार्टर्ड अकाउंटेंट	शिव शंकर झा

ब्यूरो

दीप्तानु दास (अगरतला)	लक्की सिंह (भोपाल)
पंकज मौर्य (लखनऊ)	संजू जोशी (देहरादून)
आशीष कुमार (जयपुर)	अजय शर्मा (श्री नगर)
अमित दास (गुवाहाटी)	नरेश आर्य (शिमला)
तेज सिंह (चंडीगढ़)	अजय कुमार(अहमदाबाद)
जितेन्द्र सिंह (रांची)	श्रीकांत (मुंबई)

संपादकीय व कॉरपोरेट कार्यालय

एस 40, स्कूल ब्लॉक, शकरपुर,
नई दिल्ली-110092
ई-मेलः editor@satyasadev.com
वेबसाइटः www.satyasadev.com
दूरभाषः +91 9050 29 3293

उपरोक्त सभी पद अवैतनिक हैं। पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में व्यक्त विचार पूर्णतः लेखकों के अपने हैं; सत्य-सदैव का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

स्वामी,प्रकाशक,मुद्रक एवं संपादक **राकेश कुमार** द्वारा मेसर्स आला प्रिंटिंग प्रेस, 3636, कटरा दिना बेग, लालकुआं दिल्ली-110006-से मुद्रित कराकर 19बी, जनता फ्लैट्स, पीरागढ़ी, नई दिल्ली 110041 से प्रकाशित

सुधि पाठकों एवं सम्मानित लेखकों से विनम्र आग्रह है कि वे अपनी प्रतिक्रियाएँ एवं प्रकाशनार्थ रचनाएँ ई-मेल द्वारा editor@satyasadev.com पर प्रेषित करें।

संपादकीय

संख्याबल बनाम विमर्श
संसदीय मर्यादा और अविश्वास

राकेश कुमार, संपादक

भारतीय लोकतंत्र की परिपक्वता का पैमाना केवल बहुमत का आंकड़ा नहीं, बल्कि वह वैचारिक संघर्ष है जो संसद के भीतर सत्ता और विपक्ष के बीच संवाद और असहमति के रूप में फलीभूत होता है। हाल ही में लोकसभा अध्यक्ष ओम बिरला के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा लाया गया अविश्वास प्रस्ताव इसी जीवंत लोकतांत्रिक परंपरा का एक अध्याय है। यद्यपि गणितीय आधार पर इस प्रस्ताव का भविष्य पहले से ही स्पष्ट था, किंतु संसदीय राजनीति में किसी कदम की सार्थकता केवल उसकी विजय में नहीं, बल्कि उस प्रक्रिया में निहित होती है जो लोकतंत्र को जवाबदेह बनाए रखती है।

लोकतांत्रिक ढांचे में विपक्ष की भूमिका केवल सत्ता की प्रतीक्षा करना नहीं है। उसका मौलिक उत्तरदायित्व है—संसदीय संस्थाओं की कार्यप्रणाली पर प्रश्नचिह्न अंकित करना, विमर्श को विस्तार देना और जन-असंतोष को सदन के पटल पर स्वर देना। इस दृष्टिकोण से देखें, तो स्पीकर के विरुद्ध लाया गया यह प्रस्ताव मात्र एक राजनीतिक पैंतरा नहीं था, यह उस संसदीय विमर्श को सक्रिय करने का एक सचेत प्रयास था, जो लोकतंत्र की धमनियों में रक्त के समान प्रवाहित होता है।

यह समझना अनिवार्य है कि संसद में हर प्रस्ताव का ध्येय उसकी सफलता नहीं होता। कई बार 'पराजित' होने वाले प्रस्ताव भी उन व्यापक विसंगतियों और मुद्दों को सार्वजनिक विमर्श के केंद्र में ले आते हैं, जिन्हें अक्सर बहुमत के शोर में दबा दिया जाता है। इस प्रस्ताव पर हुई चर्चा ने न केवल अध्यक्ष की निष्पक्षता और संसदीय परंपराओं पर विभिन्न दृष्टिकोणों को आमने-सामने रखा, बल्कि विधायी पारदर्शिता के प्रति एक नई चेतना भी जाग्रत की।

भारतीय लोकतंत्र की वास्तविक शक्ति उसकी समावेशिता में है, जहां बहुमत के निर्णय का सम्मान होता है, तो अल्पमत की असहमति को भी 'अधर्मी' नहीं माना जाता। यदि विपक्ष के पास अध्यक्ष या व्यवस्था पर प्रश्न उठाने का संवैधानिक अधिकार न हो, तो लोकतंत्र का स्वरूप एकाधिकारवादी हो जाएगा। अतः, यह अविश्वास प्रस्ताव संख्या के खेल में भले ही धराशायी हो गया हो, लेकिन इसने संसद को एक ऐसा मंच प्रदान किया जहां लोकतांत्रिक संस्थाओं की कार्यप्रणाली की समीक्षा संभव हो सकी।

अंततः, यह संपूर्ण घटनाक्रम भारतीय संसदीय लोकतंत्र की जीवंतता का प्रमाण है। यहाँ बहुमत शासन करता है, परंतु अल्पमत अपनी मुखरता से उस शासन को मर्यादित रखता है। यही वह संतुलन है जो भारतीय लोकतंत्र को न केवल जीवित रखता है, बल्कि उसे निरंतर सामर्थ्यवान भी बनाता है।●

शब्दचित्र

पश्चिम एशिया

युद्ध की दहलीज़ पर खड़ी सभ्यता

श्रीराजेश
मुख्य कार्यकारी संपादक

जब इतिहास विनाश के अध्याय लिखता है, तो आकाश धुएं से भर जाता है और शहर भय की छाया में सिमट जाते हैं। पश्चिम एशिया आज उसी निर्णायक क्षण पर खड़ा है, जहां युद्ध की एक चिंगारी पूरी सभ्यता को दावानल में बदल सकती है।

इतिहास जब अपने सबसे रक्तरंजित अध्याय लिखता है, तब वह शांत पुस्तकालयों में नहीं, बल्कि धधकते आकाश के नीचे लिखा जाता है - जहां स्याही की जगह रक्त बहता है और शब्दों की जगह विस्फोटों की गूंज गूंजती है। आज पश्चिम एशिया का क्षितिज उसी अनिष्टसूचक आभा से भर उठा है। मरुस्थल की तपती रेत पर उठती धूल, आसमान में तैरते धुएं के काले गुबार और दूर कहीं गूंजती मिसाइलों की गर्जना - सब मिलकर एक ऐसे दृश्य की रचना कर रहे हैं, मानो सभ्यता स्वयं किसी महाविनाश की भूमिका पढ़ रही हो।

ईरान की प्राचीन धरती - जहां कभी साम्राज्यों के स्वप्न उगे थे, जहां से दर्शन, कविता और संस्कृति की नदियां बहती थीं - आज युद्ध के अशुभ बादलों के नीचे खड़ी है। तेहरान की रातों में अब चांदनी से अधिक ड्रोन की पतली सनसनाती रोशनी तैरती है। आकाश को चीरती अग्निबाणों की लकीरें क्षण भर के लिए शहर को ऐसे प्रकाशित करती हैं, जैसे किसी भयावह चलचित्र का दृश्य अचानक जीवित हो उठा हो।

यह युद्ध पारंपरिक सेनाओं का सीधा टकराव नहीं है, यह छायाओं का युद्ध है - हाइब्रिड विनाश का वह अंधकारमय खेल, जहां मोर्चे सीमाओं पर नहीं, बल्कि प्रयोगशालाओं, बंदरगाहों और भीड़भरी गलियों के बीच बनते हैं। 'प्रतिरोध की धुरी' कहे जाने वाले संगठनों का जाल इस पूरे क्षेत्र को एक ऐसी बारूदी बेल की तरह लपेटे हुए है, जिसकी एक चिंगारी पूरे पश्चिम एशिया को दावानल में बदल सकती है। इस आग में कोई विजेता नहीं होगा—केवल राख होगी, और इतिहास के माथे पर एक और जलता हुआ घाव।

परंतु युद्ध का सबसे भयानक दृश्य रणभूमि नहीं, बल्कि शहरों की गलियों में जन्म लेता है। जब रात के सन्नाटे को चीरती मिसाइलें गिरती हैं, तो वे केवल कंक्रीट की इमारतों को नहीं ढहातीं—वे स्कूलों की घंटियां, बच्चों की हंसी और भविष्य के असंख्य सपनों को मलबे में दफना देती हैं। टूटे घरों की दीवारों से झरती धूल के बीच खड़े लोग ऐसे दिखाई देते हैं मानो समय की किसी निर्मम आंधी ने उनकी पूरी दुनिया उड़ा दी हो।

जल्द ही सड़कों पर निकलने वाली शरणार्थियों की लंबी कतारें इस त्रासदी का जीवित प्रतीक बन सकती हैं। सिर पर गठरी, हाथों में बच्चों की उंगलियां थामे ये लोग सीमाओं की ओर बढ़ेंगे—मानो मानवता का एक थका हुआ कारवां इतिहास की किसी अंधेरी सुरंग में प्रवेश कर रहा हो। यह केवल पलायन नहीं होगा, यह उस वैश्विक व्यवस्था के लिए प्रश्नचिह्न होगा जिसने शांति का वादा किया था।

इस युद्ध की लपटें केवल तेहरान या तेल अवीव तक सीमित नहीं रहेंगी। होर्मुज जलडमरूमध्य-दुनिया की ऊर्जा आपूर्ति की धड़कती कंठ-धमनी-यदि इस संघर्ष में अवरुद्ध हुआ, जिसके पूरे आसार दिख रहे हैं, तो पूरी वैश्विक अर्थव्यवस्था मानो अचानक सांस लेने के लिए हांफ उठेगी। तेल की कीमतों का उफान तब केवल बाज़ार का आंकड़ा नहीं होगा। वह करोड़ों घरों की बुझती रसोइयों और ठंडी पड़ती फैक्ट्रियों की कहानी बन जाएगा।

दार्शनिक दृष्टि से देखें तो युद्ध का अंतिम परिणाम अक्सर एक ही होता है—शून्य। प्रश्न यह नहीं कि कौन जीतेगा? प्रश्न यह है कि इस अग्नि-परीक्षा के बाद क्या बचेगा। अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं आज किसी प्राचीन मंदिर के टूटे घंटों की तरह सुनाई देती हैं - आवाज़ तो होती है, पर दिशा नहीं।

पश्चिम एशिया का यह क्षण दरअसल मानव अहंकार के उस प्रलयंकारी नृत्य का दृश्य है, जिसमें कूटनीति की भाषा को प्रतिबंधों, ड्रोन और मिसाइलों ने विस्थापित कर दिया है। यदि समय रहते विवेक का सूर्योदय नहीं हुआ, तो इतिहास हमें एक ऐसी सभ्यता के रूप में याद रखेगा जिसने अपनी तकनीकी शक्ति को ज्ञान का दीपक नहीं, बल्कि विनाश की मशाल बना दिया। और तब, जब धुआं छंटेगा और मरुस्थल की हवा फिर से बहने लगेगी, संभव है कि सभ्यता के हाथों में केवल धधकती राख, टूटे सपनों की गूंज और पछतावे की नमी ही शेष रह जाए। ●

इस अंक में खास...

14 युद्धः पश्चिम एशिया की बदलती युद्धरेखा

क्यूआर कोड का तिलिस्म 11

नैरेटिव बनाम हकीकत 28

नया नेपालः युवाओं का शंखनाद....32

रसोई पर भारी जंग 35

बिकाऊ नहीं है विश्राम 36

साझा कानून, साझी नागरिकता 40

04

शक्ति का नव-शिखर

इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में भारतीय नारी केवल समानता की मांग करने वाली आवाज नहीं रही; वह परिवर्तन की निर्णायक शक्ति बन चुकी है। कॉरपोरेट से खेल मैदान तक उसकी उपलब्धियां एक नए भारत की दिशा तय कर रही हैं।

08

बिहार का संधिकाल सत्ता, सिद्धांत व उत्तराधिकार

लगभग दो दशकों तक बिहार की राजनीति की धुरी रहे नीतीश कुमार अब ऐसे मोड़ पर खड़े दिखाई देते हैं, जहाँ सत्ता, सिद्धांत और उत्तराधिकार की नई बहस आकार ले रही है। उनका संभावित राज्यसभा गमन केवल पद परिवर्तन नहीं, बल्कि बिहार की राजनीति के एक नए अध्याय का संकेत है।

प्रज्ञा का नवोन्मेष

दिल्ली के भारत मंडपम में आयोजित एआई सम्मेलन केवल तकनीकी आयोजन नहीं था, बल्कि उस बदलते वैश्विक समीकरण का संकेत था जिसमें भारत उपभोक्ता नहीं, बल्कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता के भविष्य का निर्माता बनने की आकांक्षा के साथ विश्व मंच पर उभर रहा है।

24

हंसिका की शादी में दरार

44

शक्ति का नव-शिखर

जलज श्रीवास्तव

इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में भारतीय नारी केवल समानता की मांग करने वाली आवाज नहीं रही; वह परिवर्तन की निर्णायक शक्ति बन चुकी है। कॉरपोरेट से खेल मैदान तक उसकी उपलब्धियां एक नए भारत की दिशा तय कर रही हैं।

इतिहास के पृष्ठों पर जब भी समय की कलम से किसी युग का भाग्य लिखा जाएगा, तो इक्कीसवीं सदी का यह तीसरा दशक 'नारी-शक्ति' के चरमोत्कर्ष के रूप में अंकित होगा। यह केवल लैंगिक समानता की उद्घोषणा नहीं है, बल्कि यह उस सामर्थ्य का उत्सव है जिसने परंपराओं की बेड़ियों को पिघलाकर प्रगति का स्वर्णिम रथ तैयार किया है। आज भारत की स्त्रियां केवल नियति की सहयात्री नहीं हैं, बल्कि वे उस नियति की लेखिका हैं। वे कॉरपोरेट के बंद कमरों से लेकर खेल के मैदान की धूल तक, और कला के मौन कैनवास से लेकर मनोरंजन के रुपहले परदे तक, एक ऐसा समवेत स्वर गुंजा रही हैं जो आने वाली शताब्दियों के लिए मशाल बनेगा। यह कहानी उन चेहरों की है जिन्होंने 'कांच की छत' को केवल तोड़ा नहीं, बल्कि उसे अपने सपनों के आसमान के लिए पारदर्शी बना दिया।

भारतीय अर्थव्यवस्था के महासागर में जब हम नेतृत्व की लहरों को देखते हैं, तो नीता अंबानी का नाम एक ऐसे कुशल नाविक के रूप में उभरता है, जिन्होंने रिलायंस जैसे विशालकाय पोत को 'कोमलता' और 'दृढ़ता' का संतुलन दिया है। नीता अंबानी मात्र एक नाम नहीं, बल्कि एक दृष्टि हैं—चाहे वह धीरूभाई अंबानी इंटरनेशनल स्कूल के माध्यम से भविष्य की पौध तैयार करना हो, या 'स्वदेश' और 'नीता मुकेश अंबानी कल्चरल सेंटर' के जरिए भारत की सांस्कृतिक विरासत को वैश्विक मंच देना। वे रिलायंस की उस 'सॉफ्ट पावर' की प्रतीक हैं, जो किसी भी साम्राज्य को मानवीय स्पर्श प्रदान करती है।

विज्ञान के क्षेत्र में किरण मजूमदार-शॉ उस ध्रुवतारे की तरह हैं, जिन्होंने अपनी वैज्ञानिक चेतना से असाध्य रोगों के निवारण को अपना जीवन-लक्ष्य बनाया। बायोकॉन की सफलता यह सिद्ध करती है कि नेतृत्व केवल लाभ की गणना नहीं, बल्कि सहानुभूति और साहस का मिश्रण है। इसी साहस की प्रतिध्वनि शोभना भरतिया के जीवन में सुनाई देती है, जिन्होंने 'हिंदुस्तान टाइम्स' को डिजिटल युग की देहरी पर तब खड़ा किया जब यह विचार अपनी बाल्यावस्था में था। वे इतिहास की जड़ों और भविष्य की शाखाओं के बीच एक सेतु हैं।

युवा नेतृत्व की बात करें तो कनिका टेकरीवाल का नाम उस ऊंची उड़ान का प्रतीक है, जिसने कैंसर जैसी बाधा को मात देकर 27 साल की उम्र में निजी विमानन के आसमान पर अपना नाम लिख दिया। वहीं, प्रिया पॉल ने 'द पार्क' होटल्स को केवल ठहरने की जगह नहीं, बल्कि 'डिजाइन' और 'कला' का एक आधुनिक मंदिर बना दिया है।

प्रौद्योगिकी के मौन लेकिन प्रभावी संसार में रोशनी नाडर मल्होत्रा एचसीएल को अंतरराष्ट्रीय क्षितिज पर विस्तार दे रही हैं, तो बैंकिंग की दुनिया में अपनी धाक जमाने वाली अरुंधति भट्टाचार्य अब सेल्सफोर्स के माध्यम से भविष्य की डिजिटल अर्थव्यवस्था की आधारशिला रख

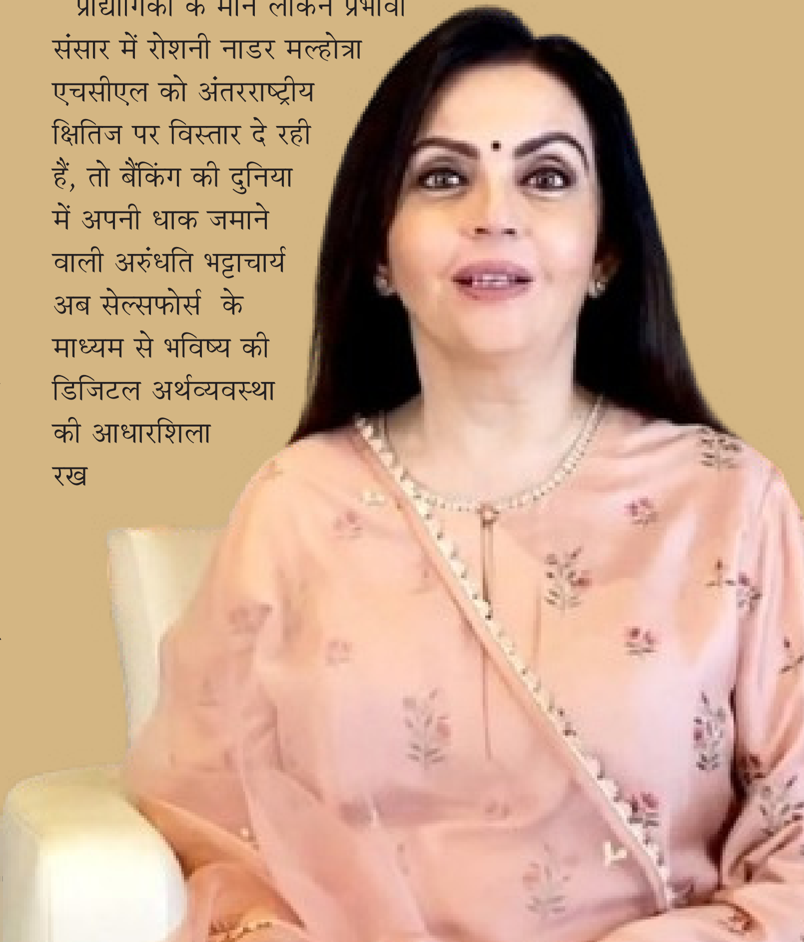

रही हैं। इस सूची में देवयानी जयपुरिया का सहयोगपरक दृष्टिकोण और वंदना लूथरा का सौंदर्य-साम्राज्य यह बताता है कि भारतीय महिला उद्यमी हर उस क्षेत्र में अपनी छाप छोड़ रही हैं जहाँ दृष्टि और दृढ़ता की आवश्यकता है। अपोलो हॉस्पिटल्स की चार बहनें (प्रीता, सुनीता, शोभना और संगीता) इस बात का जीवंत उदाहरण हैं कि पारिवारिक व्यवसाय जब स्त्रियों के हाथ में होता है, तो वह केवल एक व्यापार नहीं रहता, बल्कि सेवा और सामंजस्य का एक अभेद्य दुर्ग बन जाता है।

संस्कृति और सृजन का ताना-बाना

भारतीय फैशन जगत आज केवल वस्त्रों का व्यापार नहीं, बल्कि पहचान की एक नई भाषा है। यहाँ मसाबा गुप्ता उस विद्रोही सृजनशीलता का नाम हैं, जिन्होंने अपनी पहचान के संघर्ष को ही अपनी कला का आधार बना लिया। उनकी 'हाउस ऑफ मसाबा' आज आधुनिकता और परंपरा के बीच के धूसर क्षेत्रों को रंगों से भर रही है।

वैश्विक स्तर पर लीना नायर का 'शानेल' की सीईओ बनना भारतीय मेधा का वह अंतरराष्ट्रीय जयघोष है, जिसने यह साबित कर दिया कि कोल्हापुर की गलियों से पेरिस के लग्जरी हाउस तक का रास्ता केवल प्रतिभा से ही तय होता है। सौंदर्य के इस संसार को संवारने में अनैता श्रॉफ अदजानिया और रिया कपूर जैसे स्टाइलिस्टों का हाथ है, जो वस्त्रों को 'चरित्र' में बदल देते हैं। अनैता जहाँ ईशा अंबानी से लेकर दीपिका पादुकोण तक को वैश्विक पहचान देती हैं, वहीं रिया कपूर अपनी फिल्मों और स्टाइलिंग के जरिए नारीत्व की एक नई, बेबाक छवि गढ़ रही हैं।

डिज़ाइन की सूक्ष्मता में अनामिका खन्ना का बोहेमियन अंदाज़ और अनीथ अरोड़ा का वस्त्रों के जरिए कहानियाँ सुनाना, भारतीय कारीगरी को वैश्विक मंच पर गौरव दिला रहा है। करिश्मा स्वाली की 'चाणक्य स्कूल ऑफ क्राफ्ट' के जरिए वंचित महिलाओं को सशक्त बनाना यह दर्शाता है कि फैशन केवल दिखावा नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का एक माध्यम भी है। टीना तहलियानी पारिख का 'एन्सेम्बल' चार दशकों से भारतीय फैशन की उस निरंतरता को बनाए हुए है, जहाँ 'क्यूरेशन' ही सबसे बड़ी कला है। इस चमक-धमक के बीच दर्शना गजरे जैसे नाम हमें याद दिलाते हैं कि भविष्य 'सस्टेनेबिलिटी' में है। वे फैशन को नैतिक और उत्तरदायी बनाने की दिशा में एक मौन क्रांति का नेतृत्व कर रही हैं।

कैनवास पर उतरती नई संवेदनाएं

कला का क्षेत्र अक्सर मौन और एकांत का माना जाता है, लेकिन भारत में इसे एक जीवंत जन-आंदोलन बनाने का श्रेय किरण नाडर जैसे संरक्षकों को जाता है। 'किरण नाडर म्यूजियम ऑफ आर्ट' केवल कलाकृतियों का संग्रह नहीं है, बल्कि यह कला और जनता के बीच के संवाद की एक खुली खिड़की है।

कलाकारों की बात करें तो भारती खेर की 'बिंदी' आज वैश्विक कला दीर्घाओं में भारतीय स्त्रीत्व के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित कर रही है। जयश्री बर्मन के चित्रों में पौराणिक कथाएं और प्रकृति एक सुरीली तान की तरह मिलते हैं। कला व्यापार के क्षेत्र में जया अशोकन (इंडिया आर्ट फेयर), मीनल वज़ीरानी (सैफ्रनआर्ट) और रेणु मोदी जैसे नामों ने भारतीय कला को एक संगठित बाज़ार और वैश्विक पहचान दी है।

एक दिलचस्प नाम नताशा प्रींजा का है, जिन्होंने बरसों तक 'प्रिंसेस पी' के मुखौटे के पीछे रहकर अपनी कला के जरिए स्त्री की पहचान और अस्तित्व पर सवाल

उठाए। अब मुखौटा हटाकर वे अपनी वास्तविक पहचान के साथ कला की नई सीमाओं को लांघ रही हैं। शिरीन गांधी, सलोनी दोषी और लेखा पोद्दार जैसे नाम कला को केवल दीर्घाओं तक सीमित नहीं रहने देते, बल्कि वे कला को भविष्य के लिए संरक्षित करने और नई प्रतिभाओं को निखारने के प्रति समर्पित हैं।

प्रभुत्व और प्रतिरोध की नई पटकथा

मनोरंजन की दुनिया आज 'नायक' की छाया से मुक्त होकर 'नायिका' के तेज से आलोकित है। नयनतारा को 'लेडी बॉस' कहा जाना महज एक उपाधि नहीं, बल्कि उनके दो दशकों के उस संघर्ष का परिणाम है जहाँ उन्होंने अपनी शर्तों पर अपनी जगह बनाई। आलिया भट्ट अपनी बहुआयामी प्रतिभा से न केवल भारत बल्कि बाफ्टा और वैश्विक मंचों पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं।

ओटीटी की दुनिया में मोनिका शेरगिल (नेटफ्लिक्स) यह तय कर रही हैं कि भारत क्या देखेगा, जबकि एकता कपूर तीन दशकों से भारतीय घरों के ड्राइंग रूम पर अपनी पकड़ बनाए हुए हैं। एकता ने छोटे परदे से लेकर बड़े परदे तक, और अब डिजिटल परदे तक, नारी-केंद्रित

कहानियों को एक नया आयाम दिया है। जोया अख्तर की फिल्में मानवीय संबंधों की जटिलता को जिस संवेदनशीलता से बुनती हैं, वह सिनेमा को एक नया व्याकरण देता है।

पर्दे के पीछे की शक्ति के रूप में रोहिणी अय्यर, पूजा ददलानी और गुनीत मोंगा कपूर जैसे नाम महत्वपूर्ण हैं। गुनीत मोंगा ने ऑस्कर जीतकर यह साबित कर दिया कि भारतीय कहानियों में वह दम है कि वे पूरी दुनिया को मंत्रमुग्ध कर सकें। दीपिका पादुकोण आज केवल एक अभिनेत्री नहीं, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक मुद्दों पर एक प्रखर वैश्विक आवाज़ हैं।

पसीने से लिखी गई स्वर्णिम गाथा

खेल का मैदान अक्सर पुरुषों का आखेट-स्थल माना जाता रहा है, लेकिन 2025-26 का कालखंड भारतीय महिला खिलाड़ियों की 'विजयगाथा' का साक्षी बना। क्रिकेट में स्मृति मंधाना, हरमनप्रीत कौर और युवा शेफाली वर्मा ने न केवल विश्व कप की ट्रॉफी उठाई, बल्कि करोड़ों भारतीयों के दिलों में यह विश्वास जगाया कि 'क्रिकेट' केवल जेंडर का खेल नहीं, बल्कि प्रतिभा का खेल है। हरमनप्रीत की कप्तानी और स्मृति की बल्लेबाजी आज भारतीय क्रिकेट के नए व्याकरण हैं।

शतरंज के शांत बिसात पर दिव्या देशमुख का विश्व चैंपियन बनना और कोनेरू हम्पी की दीर्घायु निरंतरता यह बताती है कि भारतीय स्त्रियों की मेधा का लोहा पूरी दुनिया मान रही है। भारोत्तोलन में मीराबाई चानु की दृढ़ता, निशानेबाजी में मनु भाकर की अचूक एकाग्रता और मुक्केबाजी में निखत ज़रीन के घूंसे उन रूढ़ियों पर प्रहार हैं जो स्त्री को कमजोर मानती रही हैं।

बैडमिंटन में पीवी सिंधु आज एक ऐसी संस्था बन चुकी हैं, जिनका नाम जीत का पर्याय है। वहीं, एथलेटिक्स में ज्योति

याराजी की बाधाओं को पार करने वाली गति यह संकेत दे रही है कि भारतीय महिलाएँ अब वैश्विक ट्रैक पर भी किसी से पीछे नहीं हैं।

भविष्य अब नारी है

यह संकलन केवल कुछ सफल महिलाओं की सूची नहीं है; यह एक बदलते हुए भारत का घोषणापत्र है। ये स्त्रियां उस 'शक्ति' की आधुनिक अवतार हैं, जो सृजन भी करती हैं और संघर्ष भी। वे कॉरपोरेट की जटिल गणनाओं में भी सहज हैं और कला की सूक्ष्म संवेदनाओं में भी। वे खेल के मैदान के पसीने को स्वर्ण में बदलना जानती हैं और फैशन के धागों से राष्ट्र की छवि बुनना भी।

आज की भारतीय महिला ने उस 'काल्पनिक कांच की छत' को पीछे छोड़ दिया है। अब वह अपने पंख फैलाकर उस अनंत आकाश की ओर अग्रसर है, जहाँ सीमाएं केवल क्षितिज तक नहीं, बल्कि सितारों के पार जाती हैं। जैसा कि नीता अंबानी के संदर्भ में कहा गया—उन्होंने 'कम यात्रा वाले मार्ग' को चुना और उसी ने सारा अंतर पैदा कर दिया। आज पूरा देश उन रास्तों पर चलने के लिए तैयार है जिन्हें इन वीरांगनाओं ने अपनी मेहनत और मेधा से प्रशस्त किया है। •

बिहार का संधिकाल

सत्ता, सिद्धांत व उत्तराधिकार

राकेश कुमार

लगभग दो दशकों तक बिहार की राजनीति की धुरी रहे नीतीश कुमार अब ऐसे मोड़ पर खड़े दिखाई देते हैं, जहाँ सत्ता, सिद्धांत और उत्तराधिकार की नई बहस आकार ले रही है। उनका संभावित राज्यसभा गमन केवल पद परिवर्तन नहीं, बल्कि बिहार की राजनीति के एक नए अध्याय का संकेत है।

बिहार की पावन और ऐतिहासिक भूमि, जिसने सदियों से सत्ता के उत्थान और पतन के अनगिनत महाकाव्य देखे हैं, आज फिर एक ऐसे चौराहे पर खड़ी है जहाँ भविष्य की धुंधली लकीरें नए राजनीतिक विमर्श की रचना कर रही हैं। पाटलिपुत्र की गलियों से लेकर गंगा के तटों तक, एक ही चर्चा व्याप्त है—क्या बिहार की राजनीति के सबसे चतुर और धैर्यवान खिलाड़ी, नीतीश कुमार, अपनी सक्रिय प्रशासनिक पारी को विराम देकर एक नई भूमिका की ओर अग्रसर होने वाले हैं? मुख्यमंत्री पद से हटने और राज्यसभा की ओर बढ़ने की उनकी संभावित पदचाप ने राज्य के सत्ता-गलियारों में उस हलचल को जन्म दे दिया है, जिसे राजनीति के पंडित एक युग का अवसान और दूसरे के उदय की संज्ञा दे रहे हैं। यह केवल एक नेता का पद परिवर्तन नहीं है, बल्कि यह उस सत्ता-संरचना का पुनर्गठन है जिसने पिछले दो दशकों से बिहार की नियति को अपने हाथों में थाम रखा था।

सुशासन का सफर और दो दशकों की विरासत

वर्ष 2005 के उस ऐतिहासिक मोड़ को याद करना प्रासंगिक होगा, जब बिहार ने अराजकता के बादलों को छंटते देखा था और नीतीश कुमार के रूप में एक नई आशा की किरण उदय हुई थी। समाजवादी संस्कारों में रचे-बसे नीतीश ने जब सत्ता संभाली, तो उनके सामने चुनौतियों का एक हिमालय खड़ा था। उन्होंने 'सुशासन' को केवल एक नारा नहीं, बल्कि एक कार्यसंस्कृति के रूप में स्थापित किया। सड़कों का जाल, शिक्षा के प्रकाश का प्रसार, कानून का इकबाल और महिला सशक्तिकरण की उनकी योजनाओं ने बिहार की सामाजिक और प्रशासनिक तस्वीर को आमूल-चूल बदल दिया।

साइकिल और पोशाक योजना के जरिए उन्होंने जिस प्रकार से बालिकाओं को विद्यालयों तक पहुँचाया, वह आधुनिक भारत के सामाजिक परिवर्तन की सबसे सुंदर कहानियों में से एक है। लेकिन राजनीति का एक अटल नियम यह भी है कि हर लहर को एक दिन किनारे तक पहुंचना होता है। लगभग बीस वर्षों तक बिहार की राजनीति के केंद्र में रहने के बाद, नीतीश कुमार अब उस मोड़ पर खड़े दिखाई देते हैं जहाँ सक्रिय प्रशासन के स्थान पर नीतिगत मार्गदर्शन की भूमिका अधिक गरिमामय प्रतीत होती है। उनका राज्यसभा जाना केवल एक व्यक्तिगत निर्णय नहीं होगा, बल्कि यह उस युग का समापन होगा जिसने बिहार को 'जंगलराज' की छवि से निकालकर 'विकास की आकांक्षा' वाले राज्य में परिवर्तित किया।

साइकिल और पोशाक योजना के जरिए नीतीश कुमार ने जिस प्रकार से बालिकाओं को विद्यालयों तक पहुंचाया, वह आधुनिक भारत के सामाजिक परिवर्तन की सबसे सुंदर कहानियों में से एक है। लेकिन राजनीति का एक अटल नियम यह भी है कि हर लहर को एक दिन किनारे तक पहुंचना होता है।

गठबंधन की शतरंज और शक्ति का नया संतुलन

नीतीश कुमार का संभावित प्रस्थान बिहार में गठबंधन की राजनीति के भीतर एक गहरे संरचनात्मक बदलाव का संकेत है। बिहार की सत्ता हमेशा से ही एक नाजुक संतुलन पर टिकी रही है, जहाँ नीतीश कुमार ने अपनी राजनीतिक कुशलता से खुद को उस धुरी के रूप में बनाए रखा, जिसके इर्द-गिर्द सत्ता घूमती रही। कभी भारतीय जनता पार्टी के साथ तो कभी राष्ट्रीय जनता दल के साथ, उन्होंने अपनी प्रासंगिकता को हमेशा अक्षुण्ण रखा।

परंतु वर्तमान परिदृश्य में, भारतीय जनता पार्टी का बढ़ता हुआ राजनीतिक प्रभाव और राज्य में नेतृत्व विस्तार की उसकी महत्वाकांक्षा ने नए समीकरणों को जन्म दिया है। यदि नीतीश कुमार केंद्रीय राजनीति की ओर कदम बढ़ाते हैं, तो यह गठबंधन के भीतर एक बड़े समझौते का परिणाम हो सकता है। यह भाजपा के लिए एक स्वर्णिम अवसर की तरह होगा जहाँ वह लंबे समय से प्रतीक्षित अपने स्वयं के नेतृत्व को बिहार की मुख्यधारा में स्थापित कर सके। इसलिए, यह सत्ता परिवर्तन केवल एक व्यक्ति का पीछे हटना नहीं है, बल्कि यह शक्ति के उस तराजू का दोबारा झुकना है जो आने वाले समय में बिहार की राजनीतिक दिशा तय करेगा।

उत्तराधिकार का आकस्मिक उदय

इस पूरी राजनीतिक बिसात पर जो सबसे चौंकाने वाला और रोचक मोड़ उभरकर सामने आया है, वह है नीतीश कुमार के पुत्र निशांत कुमार का अचानक चर्चाओं के केंद्र में आना। लंबे समय

तक सार्वजनिक चकाचौंध से दूर, शांत और एकांतप्रिय जीवन व्यतीत करने वाले निशांत का नाम अब जनता दल यूनाइटेड के संभावित उत्तराधिकारी के रूप में फुसफुसाहटों में गूंजने लगा है।

राजनीति में उत्तराधिकार कोई नई बात नहीं है, लेकिन नीतीश कुमार के मामले में यह प्रश्न गहरा और वैचारिक हो जाता है। नीतीश कुमार ने अपने पूरे जीवन में उन मूल्यों की राजनीति की है जो वंशवाद और परिवारवाद के घोर विरोधी रहे हैं। उन्होंने बार-बार सार्वजनिक मंचों से परिवार आधारित राजनीति की आलोचना की और खुद को लोहिया एवं जयप्रकाश नारायण की उस विरासत का रक्षक बताया जो योग्यता और संघर्ष को प्राथमिकता देती है। ऐसे में, यदि निशांत कुमार को राजनीतिक मंच पर आगे लाया जाता है, तो यह नीतीश कुमार की अपनी छवि और उनके द्वारा जीवन भर प्रतिपादित सिद्धांतों के बीच एक बड़ा द्वंद्व खड़ा कर देगा। क्या यह वही रास्ता नहीं होगा जिसकी वे बरसों से निंदा करते रहे हैं? यह प्रश्न बिहार के बौद्धिक और राजनीतिक समाज को मथने के लिए पर्याप्त है।

सिद्धांत और सत्ता के बीच का विडंबनापूर्ण संघर्ष

भारतीय राजनीति के इतिहास में वंशवाद और वैचारिक प्रतिबद्धता के बीच का संघर्ष हमेशा से ही एक जटिल विषय रहा है। नेहरू-गांधी परिवार से लेकर मुलायम सिंह यादव और लालू प्रसाद यादव के कुनबे तक, परिवारवाद को अक्सर राजनीतिक दलों के स्थायित्व के लिए एक मजबूरी के रूप में देखा गया है। जब कोई दल एक ही व्यक्ति के करिश्मे और नेतृत्व पर अत्यधिक निर्भर हो जाता है, तो उस व्यक्ति के बाद दल के बिखरने का भय सताने लगता है।

जनता दल यूनाइटेड आज इसी चौराहे पर खड़ी है। नीतीश कुमार के बिना यह दल एक ऐसी नौका की तरह प्रतीत होता है जिसके पास कोई कुशल पतवार नहीं है। पार्टी के भीतर किसी दूसरे ऐसे कद्दावर नेता का अभाव है जिसकी स्वीकार्यता पूरे राज्य में हो। ऐसी स्थिति में, पार्टी के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए परिवार के ही किसी सदस्य को आगे लाना एक तात्कालिक और सरल समाधान दिखाई देता है। लेकिन क्या यह समाधान उस लोकतांत्रिक संस्थागत ढांचे को कमजोर नहीं करेगा जिसका स्वप्न समाजवादियों ने देखा था? यह विडंबना ही है कि जो नेता 'परिवार से परे राजनीति' का मशालवाहक रहा, उसे अपनी विरासत के संरक्षण के लिए अंततः परिवार की ही शरण लेनी पड़ सकती है।

विपक्षी प्रहार और राजनीतिक शुचिता के प्रश्न

नीतीश कुमार के संभावित निर्णयों और निशांत कुमार की संभावित एंट्री ने विपक्ष को एक तीखा और मारक हथियार दे दिया है। राष्ट्रीय जनता दल और अन्य विपक्षी दल जो लंबे समय से परिवारवाद के आरोपों को झेलते रहे हैं, अब वे नीतीश कुमार पर पलटवार करने के लिए तैयार बैठे हैं। उनका तर्क सरल और सीधा है—यदि नीतीश

कुमार भी उसी राह पर चल रहे हैं, तो उनकी नैतिकता और शुचिता का वह दावा कहाँ गया जिसके आधार पर वे दूसरों को कटघरे में खड़ा करते थे? यह बहस केवल आरोपों और प्रत्यारोपों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह बिहार की राजनीतिक संस्कृति के भविष्य का प्रश्न है। क्या बिहार के मतदाता, जिन्होंने बदलाव के लिए नीतीश को चुना था, अब एक नए प्रकार के परिवारवाद को स्वीकार करेंगे? या फिर यह परिवर्तन राज्य में एक नए राजनीतिक ध्रुवीकरण को जन्म देगा जहाँ विचारधारा के स्थान पर केवल सत्ता के समीकरण ही सर्वोपरि रह जाएंगे?

बिहार का भविष्य: एक नवीन अध्याय की प्रतीक्षा

आज बिहार एक ऐसे संक्रमणकाल का अनुभव कर रहा है जहाँ पुराना वृक्ष अपनी पत्तियां झाड़ने की तैयारी में है और नई कोंपलें फूटने का प्रयास कर रही हैं। नीतीश कुमार का राज्यसभा जाना उनके व्यक्तिगत राजनीतिक जीवन का एक गरिमामय विस्तार हो सकता है, जहाँ राष्ट्रीय स्तर पर उनके अनुभव और गठबंधन प्रबंधन की विशेषज्ञता का उपयोग किया जा सके।

परंतु बिहार के लिए बड़ा प्रश्न यह है कि आने वाला नेतृत्व कैसा होगा। क्या जनता दल यूनाइटेड एक नए, गैर-पारिवारिक और ऊर्जावान चेहरे को तराश पाएगी? या फिर भाजपा राज्य की राजनीति के विशाल फलक पर पूरी तरह से छा जाने के लिए तैयार है? निशांत कुमार का राजनीति में आना यदि एक वास्तविकता बनता है, तो उन्हें अपनी योग्यता को साबित करने के लिए अपने पिता की साख से अधिक मेहनत करनी होगी। उन्हें यह दिखाना

होगा कि वे केवल एक सरनेम का बोझ नहीं ढो रहे, बल्कि उनके पास बिहार की जटिल समस्याओं के लिए अपनी कोई मौलिक दृष्टि भी है।

नियति का अनंत चक्र

नीतीश कुमार का यह कदम केवल एक प्रशासनिक फेरबदल नहीं है, बल्कि यह सत्ता, सिद्धांत और पारिवारिक मोह के त्रिकोण के बीच फंसी एक गहरी मानवीय और राजनीतिक कथा है। यह घटनाक्रम हमें याद दिलाता है कि लोकतंत्र में नेतृत्व केवल जनमत से ही तय नहीं होता, बल्कि वह व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं, राजनीतिक विवशताओं और समय की मांग के जटिल ताने-बाने से निर्मित होता है।

बिहार की राजनीति आज जिस मोड़ पर है, वह केवल एक व्यक्ति की कहानी नहीं है, बल्कि यह उस राज्य की जीवंतता का प्रमाण है जो हर कुछ दशकों में अपने नायक बदलता है और नई बहसों को जन्म देता है। आने वाले वर्षों में, नीतीश कुमार का यह फैसला एक दूरदर्शी रणनीतिक कदम भी साबित हो सकता है और पार्टी के लिए एक अस्तित्वगत संकट भी। परंतु एक बात निश्चित है—बिहार की राजनीति का अगला अध्याय अब उस छाया से मुक्त होने का प्रयास करेगा जिसने उसे पिछले बीस वर्षों से ढका हुआ था। यह एक युग की पूर्णाहूति है और एक अनिश्चित लेकिन रोमांचक भविष्य का शंखनाद भी। नियति का यह चक्र निरंतर चलता रहता है, और बिहार एक बार फिर इतिहास के पन्नों पर अपनी नई इबारत लिखने के लिए तैयार है। ●

क्यूआर कोड का तिलिस्म

संतोष कुमार

एक टैप, एक क्यूआर कोड और भरोसे का एक क्षण—इतना ही काफी है सब कुछ खो देने के लिए। भारत की डिजिटल भुगतान क्रांति के पीछे धोखाधड़ी की एक खामोश महामारी छिपी है, जहां सुविधा ने सतर्कता को पीछे छोड़ दिया है और तकनीक मानवीय जागरूकता से कहीं आगे निकल गई है।

भारत के किसी भी कोने में चले जाइए—नुक्कड़ की चाय की टपरी हो, सब्ज़ी का ठेला हो या आलीशान मॉल—एक यांत्रिक आवाज़ हर जगह गूंजती है: 'पेटीएम पर 50 रुपये प्राप्त हुए।' यह आवाज़ 21वीं सदी के 'डिजिटल इंडिया' का सबसे बड़ा विजय-घोष मानी जाती है। एक स्मार्टफोन, एक क्यूआर कोड और एक 'टैप' ने भारतीय अर्थव्यवस्था को कागजी मुद्रा की सुस्ती से निकालकर डिजिटल गतिशीलता के राजमार्ग पर खड़ा कर दिया है। लेकिन कल्ट करंट के वैचारिक चश्मे से देखें तो इस चकाचौंध के पीछे एक खौफनाक 'सराब' (भ्रम) आकार ले रहा है। यह सुविधा जितनी बड़ी है, इसके पीछे छिपी डिजिटल डकैती की महामारी उतनी ही सर्द है।

सुविधा का भस्मासुर और मनोवैज्ञानिक खौफ

भारत के उभरते मध्यवर्ग के लिए अब सबसे बड़ा डर 'लेन-देन की विफलता' नहीं, बल्कि 'अदृश्य चोरी' है। दशकों तक भारतीय समाज का पैसे के साथ एक भौतिक और भावनात्मक रिश्ता रहा है—तिजोरी की चाबी, चावल के डिब्बों में छिपी नकदी और गद्दे के नीचे दबाए गए नोट सुरक्षा का एक अहसास देते थे। लेकिन जब से पैसा भौतिक से अमूर्त (डिजिटल) अंकों में बदला है, सुरक्षा का वह स्पर्श भी छिन गया है।

अब पैसा केवल स्क्रीन पर चमकते कुछ अंक हैं, जिन्हें एक गलत क्लिक शून्य में बदल सकता है। तकनीक ने यहाँ एक 'भस्मासुर' का रूप ले लिया है—जिस सुविधा को हमने अपने कल्याण के लिए बनाया था, वही अब हमारे सिर पर हाथ रखने को आतुर है। साइबर ठगों को अब किसी का ताला तोड़ने या बंदूक दिखाने की ज़रूरत नहीं; वे आपके ही अंगूठे से आपकी तिजोरी लुटवा लेते हैं।

22,842 करोड़ की अदृश्य डकैती: एक राष्ट्रीय त्रासदी

जब आंकड़े सरकारी फाइलों में होते हैं, तो वे निर्जीव लगते हैं। लेकिन जब वे किसी पेंशनभोगी की जीवनभर की जमा-पूंजी होते हैं, तो वे एक ऐसी त्रासदी बन जाते हैं जिसका कोई मातम भी नहीं मना पाता। आरबीआई (RBI) की रिपोर्ट के अनुसार, 2024 में साइबर अपराधियों ने भारतीयों को 22,842 करोड़ रुपये का चूना लगाया है। यह महज एक आर्थिक नुकसान नहीं, बल्कि एक 'साइबर-महामारी' है।

विडंबना यह है कि हर पांच में से एक भारतीय ने यूपीआई धोखाधड़ी का सामना किया है, लेकिन आधे से अधिक पीड़ित कभी रिपोर्ट दर्ज नहीं कराते। इसके पीछे 'सामाजिक शर्म' का एक गहरा मनोविज्ञान काम करता है। समाज में 'मूर्ख' कहलाने का डर पीड़ितों को खामोश कर देता है, और यही खामोशी अपराधियों के लिए ऑक्सीजन का काम करती है।

सोशल इंजीनियरिंग: जब कंप्यूटर नहीं, 'इंसानी दिमाग' हैक होता है

डिजिटल अपराधों को लेकर एक आम गलतफहमी यह है कि

हैकर किसी अंधेरे कमरे में बैठकर जटिल कोड तोड़ते हैं। सच इसके विपरीत है। आज का असली खतरा 'सिस्टम' के भीतर नहीं, बल्कि 'मानवीय व्यवहार' के भीतर है। इसे तकनीकी भाषा में 'सोशल इंजीनियरिंग' कहा जाता है।

जामताड़ा या मेवात के ठगों को कोडिंग सीखने की ज़रूरत नहीं; वे इंसानी मनोविज्ञान के डॉक्टर हैं। वे जानते हैं कि डर और लालच के क्षणों में मनुष्य की तार्किक क्षमता (Critical Thinking) शून्य हो जाती है। बिजली कटने का डर, केवाईसी अपडेट की धमकी या लॉटरी का लालच—ये सब केवल 'हुक' हैं। 'डीपफेक' तकनीक ने अब इसे और भयावह बना दिया है, जहाँ आपके किसी प्रियजन की आवाज़ या वीडियो का इस्तेमाल कर आपसे पैसे ठगे जाते हैं। यह तकनीक का वह चेहरा है जहाँ सत्य और आभास के बीच की रेखा मिट चुकी है।

डिजिटल हाशिए के शिकार और जवाबदेही का अभाव

इस व्यवस्था ने एक ऐसी आबादी को डिजिटल सिस्टम में धकेल दिया है जिनकी तकनीकी समझ शून्य है। हमारे बुज़ुर्ग और ग्रामीण व्यापारी इस 'डिजिटल सुनामी' के सबसे आसान शिकार हैं। उनके लिए मोबाइल आज भी सिर्फ बातचीत का यंत्र है, बैंक का काउंटर नहीं। डिजिटल ऐप्स का 'यूज़र इंटरफेस' जितना सरल बनाया गया है, उसने खतरे को भांपने की हमारी सहज वृत्ति को उतना ही कुंद कर दिया है।

सबसे बड़ी त्रासदी बैंकों और नियामक संस्थाओं का रवैया है। जब भी कोई धोखाधड़ी होती है, बैंक बड़ी बेशर्मी से 'उपभोक्ता की लापरवाही' का तर्क देकर पल्ला झाड़ लेते हैं। यहाँ कल्ट करंट एक बुनियादी सवाल उठाता है: यदि यह डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर इतना ही आधुनिक है, तो सुरक्षा का पूरा बोझ उस नागरिक पर क्यों डाल दिया गया है जो तकनीक का विशेषज्ञ नहीं है? बैंकों के एल्गोरिदम उन संदिग्ध लेन-देन को क्यों नहीं पहचान पाते जो उपभोक्ता के सामान्य व्यवहार से अलग होते हैं?

कानूनी भूलभुलैया और रिकवरी का रसातल

यद्यपि 1930 जैसी हेल्पलाइन और साइबर पोर्टल सक्रिय हैं, लेकिन ठगे गए पैसों की 'रिकवरी रेट' आज भी रसातल में है। पैसा एक बार खाते से निकला नहीं कि वह पलक झपकते ही क्रिप्टो-करेंसी या 'म्यूल अकाउंट्स' (फर्जी खाते) के जाल में खो जाता है। कानून की प्रक्रिया इतनी उबाऊ और थका देने वाली है कि आम आदमी न्याय की उम्मीद ही छोड़ देता है। यह 'सत्ता की सामूहिक लाचारी' का एक उदाहरण है, जहाँ अपराधी तकनीक के हाईवे पर दौड़ रहे हैं और कानून बैलगाड़ी पर उनका पीछा कर रहा है।

28 फरवरी 2026 की रात ने पश्चिम एशिया को 'रणनीति विहीन युद्ध' की आग में झोंक दिया है। खामेनेई के अंत और हॉर्मुज़ की नाकेबंदी के बीच, यह आवरण कथा भारत की ऊर्जा सुरक्षा, आर्थिक संप्रभुता और बदलती वैश्विक कूटनीति की पड़ताल करती है।

श्रीराजेश

पश्चिम एशिया की बदलती युद्धरेखा

ईरान-इजराइल | पाक-अफगानिस्तान

युद्ध

इतिहास गवाह है कि जब-जब वैश्विक शक्तियां बिना किसी दूरगामी लक्ष्य के रणभेरी बजाती हैं, तब-तब भूगोल की सीमाएं ही नहीं, बल्कि मानवता के सरोकार भी लहूलुहान होते हैं। 28 फरवरी, 2026 की उस काली रात ने पश्चिम एशिया के आकाश को केवल बारूद की रोशनी से ही नहीं भरा, बल्कि आधुनिक विश्व व्यवस्था की उन तमाम संधियों को भी धुआं-धुआं कर दिया, जो अब तक शांति का दंभ भरती थीं।

अमेरिका और इजराइल द्वारा संचालित 'ऑपरेशन एपिक फ्यूरी' ने तेहरान के हृदय में जो प्रहार किया, उसने न केवल 86 वर्षीय आयतुल्लाह अली खामेनेई के युग का अंत किया, बल्कि समूची दुनिया को एक ऐसे 'रणनीति विहीन युद्ध' की आग में झोंक दिया है, जिसका निकास द्वार किसी को दिखाई नहीं दे रहा। विशेषज्ञों ने इसे एक ऐसे युद्ध की संज्ञा दी है जो शायद शुरू तो 'अस्तित्व' बचाने के लिए हुआ, लेकिन अब यह केवल 'अहंकार' और 'अनिश्चितता' के साये में आगे बढ़ रहा है।

इस आवरण कथा में हम केवल युद्ध के धमाकों का विश्लेषण नहीं करेंगे, बल्कि उन लहरों की पड़ताल करेंगे जो तेहरान से उठकर हिंद महासागर के तटों तक पहुंचने वाली हैं। भारत, जो आज एक उभरती हुई वैश्विक शक्ति है, उसके लिए यह युद्ध केवल दूर देश का संघर्ष नहीं, बल्कि एक ऐसी अग्निपरीक्षा है जो हमारी ऊर्जा सुरक्षा, आर्थिक स्थिरता और कूटनीतिक कौशल को चुनौती दे रही है।

जब डोनाल्ड ट्रंप के नेतृत्व वाला अमेरिका बिना किसी स्पष्ट 'एक्जिट प्लान' के एक संप्रभु राष्ट्र की कमर तोड़ने का दावा करता है, और जब हॉर्मुज़ की लहरों पर तेल के टैंकरों के बदले मिसाइलें

तैरने लगती हैं, तब दिल्ली के गलियारों में सन्नाटा नहीं, बल्कि एक सजग सक्रियता की आवश्यकता होती है। आइए, विस्तार से समझते हैं कि इस 'रणनीति विहीन महासमर' के बीच भारत का स्वाभिमान और स्वार्थ किस प्रकार दांव पर लगा है...

ऑपरेशन एपिक फ्यूरी—सत्ता का शून्य और ईरान का विखंडन

28 फरवरी 2026 की रात इतिहास के पन्नों में एक अमिट और रक्तरंजित अध्याय के रूप में दर्ज हो गई है। ताजा वैश्विक घटनाक्रमों को देखें तो अमेरिका और इजराइल का 'ऑपरेशन एपिक फ्यूरी' केवल एक सैन्य हमला नहीं था, बल्कि यह एक पूरे युग के अंत की उद्घोषणा थी। तेहरान के हृदय में स्थित सर्वोच्च नेता आयतुल्लाह अली खामेनेई के आवास पर गिरी मिसाइलों ने केवल ईंट-पत्थरों को मलबे में तब्दील नहीं किया, बल्कि ईरान की उस सत्ता संरचना को ही ध्वस्त कर दिया, जो 1979 की इस्लामी क्रांति के बाद से अजेय मानी जाती थी।

खामेनेई की मृत्यु केवल एक व्यक्ति की मृत्यु नहीं है, यह उस धुरी का अंत है जिसके इर्द-गिर्द ईरान की पूरी 'प्रतिरोध की धुरी' घूमती थी। इस हमले में ईरान के रक्षा मंत्री, आईआरजीसी के प्रमुख और शीर्ष रणनीतिकार भी मारे गए। यह एक ऐसी 'डिस्कैपिटेशन स्ट्राइक' थी, जिसने ईरान के सैन्य और राजनीतिक नेतृत्व को एक ही झटके में पंगु बना दिया। आज ईरान में खामेनेई के उत्तराधिकारी की भले ही घोषणा की जा चुकी है लेकिन सत्ता का शून्य तो पैदा हुआ ही है, और यह पश्चिम एशिया के लिए अत्यंत खतरनाक है।

जब किसी राष्ट्र का शीर्ष नेतृत्व अचानक लुप्त हो जाता है, तो दो ही संभावनाएं बचती हैं—या तो आंतरिक गृहयुद्ध या फिर अंधाधुंध जवाबी कार्रवाई। ईरान की नौसेना और वायु सेना लगभग नष्ट हो चुकी है, उनकी मिसाइल क्षमताएं क्षीण कर दी गई हैं, लेकिन ईरान की असली ताकत उसके 'प्रॉक्सी' (हूती, हिज्बुल्लाह, हमास) और उसकी विचारधारा में छिपी है। यद्यपि अमेरिकी तकनीक ने ईरान के रडार और कमांड सेंटरों को अंधा कर दिया है, लेकिन क्या वह उस प्रतिशोध की ज्वाला को बुझा पाएगी जो अब ईरान की सड़कों पर धधक रही है?

यह समझना आवश्यक है कि यह हमला अंतरराष्ट्रीय नियमों की धज्जियां उड़ाते हुए किया गया। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपतियों ने जिस 'रेड लाइन' को पार करने से परहेज किया था, डोनाल्ड ट्रंप ने उसे मटियामेट कर दिया। लेकिन समस्या सैन्य जीत की नहीं है, समस्या इसके बाद की 'शून्य रणनीति' की है। खामेनेई के जाने के बाद ईरान में कौन सत्ता संभालेगा? क्या उनका जो उत्तराधिकारी उनके बेटे मोजतबा खामेनेई को ईरान का सुप्रीम लीडर गोषित किया गया है, वह ईरान के उस सत्ता तंत्र को वैसा नेतृत्व दे पाएंगे जैसा उनके पिता ने दी थी? क्या वहां कोई लोकतांत्रिक विकल्प बचेगा या फिर कट्टरपंथी रिवोल्यूशनरी गार्ड्स के बचे-कुचे हिस्से देश को एक आत्मघाती युद्ध की ओर ले जाएंगे?

इस हमले ने आधुनिक युद्धकला के एक नए और क्रूर चेहरे को उजागर किया है। अब युद्ध सीमाओं पर नहीं, बल्कि सीधे सत्ता के शीर्ष पर लड़ा जा रहा है। इजराइल के लिए यह एक 'अस्तित्ववादी' जीत हो सकती है, लेकिन वैश्विक राजनीति के लिए यह एक ऐसे पंडोरा बॉक्स को खोलने जैसा है, जहां किसी भी राष्ट्र का अध्यक्ष अब सुरक्षित नहीं है।

ईरान का विखंडन केवल एक देश की तबाही नहीं है, बल्कि यह उस क्षेत्रीय संतुलन का अंत है जिसने दशकों से तेल की राजनीति और कूटनीति को बांधे रखा था। यह चिंता जायज है कि क्या अमेरिका

ने इस हमले के परिणामों का आकलन किया है? क्योंकि जब एक घायल और नेतृत्व विहीन राष्ट्र अपनी अंतिम सांसें ले रहा होता है, तो वह सबसे अधिक घातक साबित होता है। हॉर्मुज़ की लहरों पर जो बारूद की गंध है, वह इसी विखंडन की पहली आहट है।

रणनीति का अभाव और ट्रंप का 'अनप्रेडिक्टेबल' महासमर

जब डोनाल्ड ट्रंप ने व्हाइट हाउस की कमान संभाली थी, तब उनका नारा 'अमेरिका फर्स्ट' और अंतहीन युद्धों को समाप्त करने का था। लेकिन आज विडंबना यह है कि उनके नेतृत्व में अमेरिका एक ऐसे दलदल में फंस गया है, जिसका न कोई स्पष्ट सिरा है और न ही कोई निकास योजना। सैन्य हमले में तात्कालिक सफलता प्राप्त कर लेना एक बात है, लेकिन उस हमले को एक स्थायी भू-राजनीतिक समाधान में बदलना बिल्कुल दूसरी बात, और यहीं ट्रंप का प्रशासन पूरी तरह विफल नजर आता है।

व्हाइट हाउस से आने वाले विरोधाभासी बयान इस रणनीतिक शून्यता को और गहरा कर रहे हैं। राष्ट्रपति ट्रंप कभी इसे 'ईरानी जनता की मुक्ति' का नाम देते हैं, तो कभी उनका स्वर केवल परमाणु प्रतिष्ठानों को नष्ट करने तक सीमित हो जाता है। यदि यह 'शासन परिवर्तन' की कोशिश है, तो अमेरिका के पास इसका कोई विकल्प तैयार नहीं है। क्या अमेरिका वहां अपनी सेनाएं उतारकर एक और इराक या अफगानिस्तान जैसा दशकों लंबा संघर्ष झेलने को तैयार है? बिना किसी राजनीतिक रोडमैप के किया गया इतना बड़ा हमला केवल अराजकता को जन्म देता है।

मेरी राय में यह अनिश्चितता की पराकाष्ठा है। ट्रंप की कार्यशैली हमेशा से ही पारंपरिक राजनयिक मर्यादाओं को तोड़ने की रही है। लेकिन जब मामला एक परमाणु शक्ति संपन्न क्षेत्र और वैश्विक ऊर्जा गलियारे का हो, तो यह अनिश्चितता 'रणनीतिक प्रतिभा' नहीं बल्कि 'वैश्विक जोखिम' बन जाती है। इजराइल इस युद्ध को अपने अस्तित्व की लड़ाई मानकर चरम तक ले जाने को आमादा है, जबकि ट्रंप का झुकाव शायद केवल एक 'बड़ी सैन्य जीत' दिखाकर घरेलू राजनीति में लाभ पाने तक सीमित है। लक्ष्य की इस भिन्नता ने वाशिंगटन और यरूशलेम के बीच भी एक धुंधली रेखा खींच दी है।

सबसे बड़ा सवाल यह है कि यदि ईरान अपने 'प्रॉक्सी' नेटवर्कों के माध्यम से एक 'अदृश्य युद्ध' छेड़ देता है, तो अमेरिका की प्रतिक्रिया क्या होगी? क्या ट्रंप प्रशासन के पास ईरान के भीतर एक नई और स्थिर व्यवस्था बनाने का कोई खाका है? अब तक के घटनाक्रम बताते हैं कि वहां केवल 'प्रहार करो और भागों' की नीति चल रही है। यह नीति एक महाशक्ति के लिए शोभा नहीं देती, क्योंकि इसमें पहल तो आपके हाथ में होती है, लेकिन परिणाम की बागडोर आपके शत्रुओं के पास चली जाती है।

लगभग 20% और लिक्विफाइड नेचुरल गैस (एलएनजी) का एक बड़ा हिस्सा ढोने वाला जीवन-पथ है। भारत के लिए, यह जलमार्ग हमारी आर्थिक संप्रभुता की वह जीवनरेखा है, जिस पर कोई भी प्रहार सीधे तौर पर देश के आम नागरिक की थाली और जेब पर असर डालता है।

भारत अपनी ऊर्जा जरूरतों का 80% से अधिक हिस्सा आयात करता है, जिसमें से एक बड़ा हिस्सा इसी अशांत क्षेत्र से आता है। जब ब्रेंट क्रूड की कीमतें रातों-रात बढ़कर $84 प्रति बैरल के पार चली गईं और कतर ने अपने एलएनजी टर्मिनलों को सुरक्षा कारणों से बंद कर दिया, तो भारत की राजकोषीय गणित पूरी तरह चरमरा गई। 'द इकोनॉमिस्ट' की रिपोर्ट के अनुसार, गैस की कीमतों में 50% का उछाल यूरोप के लिए केवल एक आर्थिक झटका हो सकता है, लेकिन भारत जैसे विकासशील देश के लिए यह एक 'मुद्रास्फीति बम' की तरह है।

वास्तव में ऊर्जा सुरक्षा का अर्थ केवल पेट्रोल-डीजल की उपलब्धता नहीं है। जब तेल की कीमतों में 10% की वृद्धि होती है, तो यह देश के व्यापार घाटे को अरबों डॉलर तक बढ़ा देती है। इससे भारतीय रुपया कमजोर होता है, जिससे आयातित वस्तुएं और महंगी हो जाती हैं। यदि यह युद्ध खिंचता है, जैसा कि डोनाल्ड ट्रंप की 'रणनीति विहीन' कार्यशैली से प्रतीत हो रहा है, तो भारत के सामने दोहरी चुनौती होगी। एक ओर हमें अपनी घरेलू अर्थव्यवस्था को इस वैश्विक झटके से बचाना है, और दूसरी ओर उस 'आर्थिक संप्रभुता' को बरकरार रखना है जो हमें बाहरी दबावों के आगे झुकने से रोकती है।

भारत अपनी ऊर्जा जरूरतों का 80% से अधिक हिस्सा आयात करता है, जिसमें से एक बड़ा हिस्सा इसी अशांत क्षेत्र से आता है। जब ब्रेंट क्रूड की कीमतें रातों-रात बढ़कर $84 प्रति बैरल के पार चली गईं और कतर ने अपने एलएनजी टर्मिनलों को सुरक्षा कारणों से बंद कर दिया, तो भारत की राजकोषीय गणित पूरी तरह चरमरा गई।

झटकों को सहन कर सके।

इजराइल और खाड़ी देशों का 'अस्तित्ववादी' युद्ध

इस महासमर ने पश्चिम एशिया के मानचित्र पर एक ऐसी लकीर खींच दी है, जहां अब 'तटस्थता' के लिए कोई स्थान नहीं बचा है। इजराइल के लिए यह युद्ध किसी कूटनीतिक जीत का माध्यम नहीं, बल्कि उसके अस्तित्व की रक्षा का अंतिम विकल्प बन चुका है। इजराइली विपक्ष के नेता यायर लैपिड का यह तर्क कि 'परमाणु हथियारों के मुहाने पर खड़े ईरान के साथ कोई समझौता संभव नहीं है', इजराइल की उस सामूहिक मानसिकता को दर्शाता है जो अब 'आर-पार' के मूड में है। इजराइल इसे अपनी सुरक्षा के लिए 'अभी नहीं तो कभी नहीं' के अवसर के रूप में देख रहा है।

किंतु इस युद्ध की सबसे जटिल और विरोधाभासी तस्वीर खाड़ी देशों के खेमे से उभर रही है। सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात और कतर जैसे देश एक ऐसी दुविधा में फंसे हैं, जहां एक ओर ईरान का 'वर्चस्ववादी खतरा' है और दूसरी ओर अमेरिका की 'अस्थिर नीति'। खाड़ी के सुल्तान निजी बातचीत में तो अमेरिका को इस अभियान को तार्किक अंत तक पहुंचाने की सलाह दे रहे हैं, लेकिन सार्वजनिक रूप से वे किसी भी सैन्य गठबंधन का हिस्सा बनने से कतरा रहे हैं। उन्हें डर है कि यदि अमेरिका बिना किसी ठोस समाधान के पीछे हटा, तो ईरान के बचे-कुचे 'प्रॉक्सी' जैसे हूती और हिजबुल्लाह, उनके कांच के महलों को निशाना बनाएंगे।

खाड़ी देशों का यह डर केवल सैन्य नहीं, बल्कि आर्थिक भी है। इन देशों ने पिछले एक दशक में अपनी अर्थव्यवस्थाओं को तेल से हटाकर पर्यटन और तकनीक पर आधारित करने के लिए अरबों डॉलर का निवेश किया है। यदि इस क्षेत्र में अस्थिरता का यह दौर लंबा खिंचता है, तो दुबई और रियाद जैसे उभरते वैश्विक केंद्र अपनी चमक खो सकते हैं। भारत के लिए यह स्थिति विशेष रूप से चिंताजनक है क्योंकि हमारे 'इंडिया-मिडल ईस्ट-यूरोप कॉरिडोर' (आईएमईसी) का भविष्य इन्हीं देशों की स्थिरता पर टिका है।

इजराइल की सैन्य श्रेष्ठता और खाड़ी देशों की मौन सहमति ने ईरान को अलग-थलग तो कर दिया है, लेकिन क्या यह अलगाव एक स्थायी शांति की गारंटी है? जब किसी क्षेत्रीय शक्ति को दीवार से सटा दिया जाता है, तो वह 'अस्तित्ववादी युद्ध' को 'वैश्विक अराजकता' में बदल सकती है। इजराइल का मानना है कि सांप का सिर कुचल दिया गया है, लेकिन खाड़ी देशों को भय है कि सांप के विष की लहरें अभी और दूर तक जाएंगी।

भारत के लिए यहां संतुलन साधना अत्यंत कठिन है। एक ओर हमारा घनिष्ठ मित्र इजराइल है, जिसके साथ हमारे रक्षा संबंध गहरे हैं, और दूसरी ओर खाड़ी देश हैं, जहां हमारे लाखों नागरिक बसते हैं और जो हमारी ऊर्जा का मुख्य स्रोत हैं। इस 'अस्तित्ववादी युद्ध' ने भारत के सामने यह प्रश्न खड़ा कर दिया है कि क्या हम इस अशांत क्षेत्र में एक 'सुरक्षा प्रदाता' की भूमिका निभाने के लिए तैयार हैं, या फिर हम केवल मूकदर्शक बने रहकर अपनी परियोजनाओं को स्वाहा होते देखेंगे?

क्षेत्रीय सुरक्षा और भारत का पड़ोसी संकट

स्थिति निरंतर भयावह होती जा रही है, उसका केंद्र केवल तेहरान नहीं, बल्कि दक्षिण एशिया की वे सीमाएं भी हैं जो भारत की सुरक्षा से सीधे जुड़ी हैं। ईरान में उपजे इस महासंकट की आंच ने भारत के दो पड़ोसी देशों—पाकिस्तान और अफगानिस्तान—को एक ऐसे चौराहे पर खड़ा कर दिया है, जहां से उठने वाली अशांति की लहरें सीधे तौर पर भारत के 'पश्चिम' को प्रभावित कर रही हैं। यह स्थिति अत्यंत गंभीर है क्योंकि यह युद्ध अब हमारी चौखट तक पहुंच चुका है।

पाकिस्तान के लिए यह स्थिति किसी दुःस्वप्न से कम नहीं है।

ईरान पर हमले के विरोध में कराची से लेकर इस्लामाबाद तक जिस तरह का जनाक्रोश भड़का है और अमेरिकी वाणिज्य दूतावासों पर जो हमले हुए हैं, वे पाकिस्तान के भीतर एक नए गृहयुद्ध की आहट हैं। पाकिस्तान और अफगानिस्तान की सीमा पर बढ़ता सैन्य संघर्ष भारत के लिए दोहरी चुनौती पेश करता है। एक अस्थिर और हिंसक पाकिस्तान न केवल सीमा पार आतंकवाद को खाद-पानी दे सकता है, बल्कि ईरान से लगी उसकी सीमा पर होने वाली हलचल भारत के 'चाबहार बंदरगाह' जैसे रणनीतिक निवेश को भी मलबे में तब्दील कर सकती है।

अफगानिस्तान की स्थिति और भी विकट है। तालिबान शासन और ईरान के बीच पहले से ही जल विवाद और सीमा संघर्ष चल रहे थे। अब ईरान में नेतृत्व के बिखराव का लाभ उठाकर क्षेत्रीय गुट अपनी महत्वाकांक्षाएं पूरी करने की कोशिश करेंगे, जिसका सीधा असर कश्मीर और पंजाब की सुरक्षा पर पड़ सकता है। जब भारत का विस्तारित पड़ोस आग की लपेट में हो, तो भारत का तटस्थ रहना असंभव हो जाता है।

इस संकट का एक और मानवीय और सुरक्षा पहलू है—प्रवासी सुरक्षा। इस तथ्य को रेखांकित करना आवश्यक है कि खाड़ी देशों में लगभग 90 लाख भारतीय रहते हैं। यदि युद्ध का दायरा बढ़ा और ईरान ने जवाबी कार्रवाई में दुबई या रियाद को और गंभीर तरीके से निशाना बनाया, तो भारत को इतिहास का सबसे बड़ा 'रेस्क्यू ऑपरेशन' चलाना पड़ सकता है। यह केवल लोगों को वापस लाने की चुनौती नहीं है, बल्कि उस 'रेमिटेंस' के रुक जाने का संकट भी है जो भारत के विदेशी मुद्रा भंडार की रीढ़ है।

इसके अतिरिक्त, इस क्षेत्रीय अस्थिरता के बीच चीन की भूमिका अत्यंत संदिग्ध और खतरनाक है। चीन इस युद्ध में सीधे नहीं कूद रहा, बल्कि वह ईरान के विखंडन का उपयोग अपनी 'स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्स' नीति को मजबूत करने और भारत के प्रभाव को कम करने के लिए कर रहा है। भारत के लिए यह क्षण केवल एक युद्ध को देखने का नहीं, बल्कि अपनी पश्चिमी सीमाओं और समुद्री हितों की रक्षा के लिए एक 'फोर्ट्रेस इंडिया' रणनीति अपनाने का है। क्षेत्रीय सुरक्षा का यह संकट हमें चेतावनी दे रहा है कि वैश्विक संघर्षों के दौर में पड़ोस की आग को शांत रखने के लिए केवल कूटनीति नहीं, बल्कि मजबूत सैन्य प्रतिरोध की भी आवश्यकता होती है।

भारत की कूटनीतिक चुनौती और 'विश्व-मित्र' की अग्निपरीक्षा

इस आवरण कथा का निष्कर्ष एक कड़वे सत्य की ओर इशारा करता है—यह युद्ध जितना सैन्य है, उससे कहीं अधिक कूटनीतिक है। भारत के लिए यह क्षण केवल एक दर्शक बने रहने का नहीं है, बल्कि अपनी 'रणनीतिक स्वायत्तता' को सिद्ध करने की सबसे

जो देश दशकों तक 'सामरिक गहराई' के नाम पर पड़ोसियों के घर में आग लगाता रहा, आज वही आग उसकी अपनी दहलीज को राख कर रही है। फरवरी 2026 के अंतिम दिन जब दुनिया का ध्यान पश्चिम एशिया के महासमर पर टिका था, तब दक्षिण एशिया की सबसे अशांत सरहद—'डूरंड लाइन'—पर एक ऐसा सैन्य और सियासी भूकंप आया, जिसने इस्लामाबाद के हुक्मरानों की रातों की नींद उड़ा दी है। यह केवल दो देशों की सीमाई झड़प नहीं है, बल्कि यह उस भस्मासुर के पलटवार की खौफनाक दास्तां है, जिसे पाकिस्तानी सेना ने अपनी ही प्रयोगशाला में गढ़ा था।

आज पाकिस्तान जिस तालिबान से 'खुला युद्ध' लड़ रहा है, उसे पालने-पोषने और नाटो सेनाओं के खिलाफ सुरक्षित पनाहगाह देने का काम कभी रावलपिंडी के 'जनरलों' ने ही किया था। अंतरराष्ट्रीय कूटनीति का इससे क्रूर मज़ाक क्या होगा कि जिस तालिबान को पाकिस्तान अपनी 'जीत' मान रहा था, वही आज उसके अस्तित्व के लिए सबसे बड़ा खतरा बन चुका है।

डूरंड लाइन पर 'खुला युद्ध'

फरवरी 2026 के अंतिम सप्ताह में अफगानिस्तान की तालिबान सरकार ने डूरंड लाइन के पास स्थित पाकिस्तानी सैन्य ठिकानों पर भीषण हमला बोल दिया। इसके जवाब में पाकिस्तानी वायुसेना ने न केवल सीमावर्ती प्रांतों, बल्कि इतिहास में पहली बार काबुल के शहरी इलाकों पर भी बमबारी की। पाकिस्तान के रक्षा मंत्री ख्वाजा आसिफ का इसे 'खुला युद्ध' करार देना यह बताता है कि अक्टूबर 2025 का वह कमज़ोर युद्धविराम अब कागजी टुकड़ा मात्र रह गया है। संयुक्त राष्ट्र के आंकड़े बताते हैं कि इस संघर्ष में अब तक सैकड़ों निर्दोष नागरिक हताहत हुए हैं, लेकिन बारूद की यह गंध थमने का नाम नहीं ले रही।

टीटीपी: एक ही सिक्के के दो पहलू

इस खूनी टकराव की जड़ में एक ही नाम है—तहरीक-ए-तालिबान पाकिस्तान (टीटीपी)। पाकिस्तान का आरोप है कि अफगान तालिबान ने टीटीपी के आतंकियों को 'स्टेट गेस्ट' बना रखा है। वास्तविकता यह है कि टीटीपी और अफगान तालिबान वैचारिक और रणनीतिक रूप से जुड़वां भाई हैं। टीटीपी का जन्म ही पाकिस्तान की उन दोगली नीतियों के गर्भ से हुआ था, जहां उसने अमेरिकी दबाव में अपने ही पाले हुए जिहादियों पर कार्रवाई की थी। आज अफगान तालिबान अपने उन पुराने वफादारों की पीठ में छुरा घोंपने को तैयार नहीं है, जिन्होंने बुरे वक्त में उनका साथ दिया था। 16 फरवरी 2026 को हुए आत्मघाती हमले में 11 पाकिस्तानी जवानों की शहादत और उसके जवाब में हुई बमबारी ने दोनों देशों को विनाश के मुहाने पर खड़ा कर दिया है।

'भस्मासुर' का पलटवार

दशकों तक 'सामरिक गहराई' के नाम पर आतंकवाद बोने वाला पाकिस्तान आज अपनी ही प्रयोगशाला के 'भस्मासुर' से लहूलुहान है। डूरंड लाइन पर तालिबान के साथ छिड़ा यह 'खुला युद्ध' रावलपिंडी की उन आत्मघाती नीतियों का परिणाम है, जिसने अंततः आका को ही निशाना बनाया है।

गुलामी की जंजीरें या ताबूतों की कतार?

अगस्त 2021 में जब काबुल पर तालिबान का कब्ज़ा हुआ, तो तत्कालीन प्रधानमंत्री इमरान खान ने इसे 'गुलामी की जंजीरें टूटना' बताया था। इस्लामाबाद को लगा था कि काबुल में उनकी कठपुतली सरकार आ गई है। लेकिन यह मुगालता जल्द ही लहूलुहान हो गया। सत्ता संभालते ही तालिबान ने उस 1,622 मील लंबी 'डूरंड लाइन' को मानने से इनकार कर दिया, जिसे अफगान राष्ट्रवाद कभी स्वीकार नहीं करता। 2025 में पाकिस्तान में आतंकी हमलों में 1,200 से अधिक लोगों का मारा जाना यह सिद्ध करता है कि पाकिस्तान की 'सामरिक गहराई' की नीति अब उसकी अपनी 'सामरिक तबाही' बन चुकी है। जब सेना टीटीपी को काबू करने में विफल रही, तो उसने 10 लाख अफगान शरणार्थियों को जबरन खदेड़कर अपनी खीझ निकाली, जिससे दोनों देशों के बीच नफरत की खाई अब पाटना असंभव हो गया है।

वैश्विक बिसात पर महाशक्तियों का दांव

अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान की यह जंग शून्य में नहीं लड़ी जा रही। चीन के लिए यह एक 'बुरा सपना' है, क्योंकि उसका 65 अरब डॉलर का 'सीपेक' प्रोजेक्ट अब टीटीपी के निशाने पर है। बीजिंग हर हाल में इस युद्ध को शांत कराना चाहता है ताकि उसका 'सिल्क रूट' सुरक्षित रहे। दूसरी ओर, रूस ने जुलाई 2025 में तालिबान हुकूमत को औपचारिक मान्यता देकर एक ऐसा दांव चला है जिसने वाशिंगटन की बेचैनी बढ़ा दी है। अमेरिका की वापसी और 'ट्रंप 2.0' के संभावित आगमन ने इस क्षेत्र में अनिश्चितता और बढ़ा दी है। डोनाल्ड ट्रंप का पाकिस्तानी सेना प्रमुख जनरल असीम मुनीर के साथ तालमेल और तालिबान के प्रति उनका आक्रामक रुख, इस संघर्ष को एक नया मोड़ दे सकता है।

नई दिल्ली की 'स्मार्ट प्लेबुक' और भारत का हित

इस पूरे घटनाक्रम में भारत का दृष्टिकोण अत्यंत व्यावहारिक और रणनीतिक रहा है। पाकिस्तान भले ही अपनी नाकामी छिपाने के लिए भारत पर टीटीपी को उकसाने का आरोप लगाए, लेकिन सच यह है कि नई दिल्ली ने 2021 के बाद अफ़ग़ानिस्तान को लेकर अपनी नीति में गज़ब का 'रीसेट' किया है। अक्टूबर 2025 में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा तालिबानी प्रतिनिधिमंडल का स्वागत करना और मानवीय सहायता जारी रखना यह दर्शाता है कि भारत अब इस क्षेत्र में एक 'यथार्थवादी शक्ति' की तरह व्यवहार कर रहा है। पाकिस्तान और तालिबान की यह आपसी दुश्मनी भारत के लिए एक ऐसी सुविधाजनक स्थिति पैदा करती है, जहां हमें अपने पारंपरिक शत्रु को अपने ही पाले हुए भस्मासुर से जूझते हुए देखने का मौका मिल रहा है।

सांप पालने का अंजाम

डैनियल मार्की जैसे विशेषज्ञ इसे 'कोएर्सिव डिप्लोमेसी' का दौर मानते हैं। पाकिस्तान और तालिबान तब तक लड़ेंगे जब तक लड़ना अनुत्पादक न हो जाए, और फिर कूटनीति का नाटक करेंगे। लेकिन यह कोई समाधान नहीं है। पाकिस्तान आज जिस आग में झुलस रहा है, वह किसी विदेशी ताकत ने नहीं, बल्कि उसकी अपनी 'जेहादी फैक्ट्री' ने लगाई है।

हमारा स्पष्ट मत है कि राज्य समर्थित आतंकवाद कभी भी 'टूल' नहीं हो सकता, वह हमेशा एक 'कैंसर' होता है जो अंततः अपने ही शरीर को नष्ट करता है। सांप पालने वाले इस मुगालते में थे कि वह केवल पड़ोसियों को डसेगा, लेकिन 2026 की कड़वी हकीकत यही है कि वह सांप अब आका के बेडरूम तक पहुंच चुका है। भारत के लिए यह क्षण अपनी सीमाओं को और मजबूत करने और 'फोर्ट्रेस इंडिया' की रणनीति पर अडिग रहने का है, क्योंकि जब पड़ोस के घर में भस्मासुर नाच रहा हो, तो अपनी सुरक्षा केवल अपने ही शौर्य से संभव है। ●

बड़ी चुनौती है। एक ओर हमारा रणनीतिक साझेदार अमेरिका है, जिसके साथ हमारे संबंध रक्षा और तकनीक के क्षेत्र में हैं; दूसरी ओर इजराइल है, जो हमारा विश्वसनीय रक्षा सहयोगी है और तीसरी ओर ईरान व खाड़ी देश हैं, जो हमारी ऊर्जा और क्षेत्रीय कनेक्टिविटी के स्तंभ हैं।

अगर वैचारिक अधिष्ठान से देखें तो भारत की स्थिति 'कुरुक्षेत्र' में उस तटस्थ शक्ति जैसी है जिसे शांति और न्याय के बीच संतुलन बनाना है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की 'यह युद्ध का युग नहीं है' वाली घोषणा आज फिर से वैश्विक मंच पर प्रतिध्वनित हो रही है। उल्लेखनीय है कि अमेरिका के पास 'निकास योजना' नहीं है, और यहीं भारत के लिए एक अवसर पैदा होता है। भारत दुनिया के उन गिने-चुने देशों में से है जिसके संबंध वाशिंगटन, यरूशलेम और तेहरान—तीनों से संवाद के स्तर पर हैं। क्या भारत एक 'बैक-चैनल' मध्यस्थ की भूमिका निभाकर इस 'रणनीति विहीन युद्ध' को एक 'रणनीतिक शांति' में बदल सकता है?

कूटनीतिक चुनौती का दूसरा पहलू चीन और रूस की भूमिका है। यदि भारत इस संकट में मूकदर्शक बना रहता है, तो चीन इस भू-राजनीतिक शून्य को भरने में देर नहीं करेगा। ईरान के पुनर्निर्माण और ऊर्जा सौदों में चीन का बढ़ता दखल भारत के 'चाबहार' और आईएनएसटीसी (इंटरनेशनल नॉर्थ-साउथ ट्रांसपोर्ट कॉरिडोर) के सपनों को चकनाचूर कर सकता है। इसलिए, भारत को अपनी 'पड़ोस प्रथम' नीति और 'विस्तारित पड़ोस' में अपनी सक्रियता बढ़ानी होगी।

सत्य ही शाश्वत है

अंततः, हमें यह स्थिति आत्म-चिंतन की ओर ले जाती है। 'ऑपरेशन एपिक फ्यूरी' ने यह सिद्ध कर दिया है कि आधुनिक विश्व में केवल शक्ति ही संप्रभुता की रक्षा नहीं कर सकती, उसके पीछे एक स्पष्ट दूरदर्शिता और मानवीय संवेदना का होना भी अनिवार्य है। बिना किसी ठोस भविष्यगामी रणनीति के छेड़ा गया यह युद्ध केवल मलबे के ढेर और अशांत पीढ़ियां पैदा करेगा।

भारत के लिए संदेश स्पष्ट है—हॉर्मुज़ की लहरों से लेकर तेहरान के धुएं तक, हर हलचल हमारी अर्थव्यवस्था और सुरक्षा को प्रभावित करेगी। हमें अपनी रक्षा आत्मनिर्भरता को केवल एक नारा नहीं, बल्कि धरातल पर एक अभेद्य कवच बनाना होगा। इस महासमर के बीच भारत को एक ऐसी आवाज बनना चाहिए जो बारूद के शोर में भी विवेक और शांति का मार्ग प्रशस्त करे।

जब इतिहास इस कालखंड का न्याय करेगा, तो वह केवल यह नहीं देखेगा कि किसने कितनी मिसाइलें दागीं, बल्कि यह देखेगा कि किस राष्ट्र ने विनाश के उस तांडव के बीच सभ्यता के मूल्यों को जीवित रखने का साहस दिखाया। भारत को अपनी इसी प्राचीन संस्कृति और आधुनिक शक्ति के समन्वय से इस 'रणनीति विहीन युद्ध' के अंधेरे में 'विश्व-मित्र' की मशाल जलानी होगी। सत्य यही है कि युद्ध कभी किसी समस्या का अंत नहीं होता, वह केवल नई समस्याओं का आरम्भ होता है। और भारत की कूटनीति का असली परीक्षण इसी सत्य को वैश्विक पटल पर स्थापित करने में है। ●

सत्य सदैव

से जुड़ें

विचारों का सच्चा संगम

सत्य सदैव वह मंच है जहां विविध दृष्टिकोण, अनुभव और विचार एक साथ मिलते हैं। यह उन जिज्ञासु और जागरूक पाठकों का मंच है जो अपने समय के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्नों को गहराई से समझना चाहते हैं। हमारा प्रयास केवल समाचार देना नहीं, बल्कि विचारों का ऐसा संवाद स्थापित करना है जहां मतभेद के बावजूद सार्थक चर्चा हो सके। सत्य सदैव अपने पाठकों को एक ऐसा बौद्धिक मंच प्रदान करता है जहां खुली सोच, तर्कपूर्ण विमर्श और परस्पर सम्मान के साथ हम अपने समाज और दुनिया को समझने की दिशा में आगे बढ़ते हैं।

सत्य सदैव को सब्सक्राइब करें

और बनें उस समुदाय का हिस्सा जो सत्य, संवाद और विचार की शक्ति में विश्वास रखता है।

केवल
₹ 30
प्रति अंक

अभी ऑर्डर करें: satyasadev.com

satyasadev.com का असीमित एक्सेस	**विज्ञापन-मुक्त साइट ब्राउज़ करें**	**विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफार्म्स पर उपलब्ध**	**शीघ्र ही YouTube पर भी होगी हमारी मौजूदगी**

सब्सक्रिप्शन का वार्षिकि ₹ 300। यह ऑफर केवल नए सब्सक्राइबर्स के लिए है।

प्रज्ञा का नवोन्मेष

सत्य सदैव ब्यूरो

दिल्ली के भारत मंडपम में आयोजित एआई सम्मेलन केवल तकनीकी आयोजन नहीं था, बल्कि उस बदलते वैश्विक समीकरण का संकेत था जिसमें भारत उपभोक्ता नहीं, बल्कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता के भविष्य का निर्माता बनने की आकांक्षा के साथ विश्व मंच पर उभर रहा है।

बीते माह की वह गुनगुनी दोपहर, जब दिल्ली की हवाओं में वसंत की आहट थी, प्रगति मैदान स्थित भारत मंडपम केवल एक सम्मेलन केंद्र मात्र नहीं रह गया था। वह एक जीवंत, धड़कता हुआ ऐसा तंत्रिका केंद्र नजर आ रहा था, जहाँ कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से मानवता के भविष्य की पटकथा लिखी जा रही थी। पिछले कुछ दशकों से तकनीक का जो विमर्श पश्चिमी गोलार्ध की सिलिकॉन वैली के वातानुकूलित कमरों तक सीमित था, वह अब वहां से खिसक कर वैश्विक दक्षिण की इस प्राचीन किंतु नूतन धरती पर आ चुका है। यह सम्मेलन इस बात का उद्घोष था कि भारत अब दुनिया के लिए केवल काम करने वाला एक पिछला कार्यालय भर नहीं है, बल्कि वह अब उस वैश्विक प्रयोगशाला में बदल चुका है, जहाँ कृत्रिम बुद्धिमत्ता का भविष्य गढ़ा जाएगा।

भारत मंडपम के गलियारों में जब ओपन एआई के सैम ऑल्टमैन, एनवीडिया के जेन्सेन हुआंग, गूगल के सुंदर पिचाई और माइक्रोसॉफ्ट के सत्या नडेला जैसे दिग्गज एक साथ कदम रख रहे थे, तो वह दृश्य वैश्विक शक्ति संतुलन में आए एक बड़े बदलाव का प्रतीक था। यह संगम इस बात का प्रमाण था कि अब भारत के 1.4 अरब लोगों की आकांक्षाएं और उनकी समस्याएं दुनिया के लिए सबसे बड़ा नवाचार अवसर बन चुकी हैं। यह सम्मेलन भारत की उस महायात्रा का चरम बिंदु था, जहाँ एक राष्ट्र अपनी जटिल चुनौतियों का समाधान स्वदेशी और मौलिक दृष्टि से करने का संकल्प ले रहा था।

इंडिया एआई मिशन

इस महाकुंभ का उद्घाटन करते हुए प्रधानमंत्री ने जब 1.4 अरब डॉलर के इंडिया एआई मिशन का खाका प्रस्तुत किया, तो वह केवल एक सरकारी बजट का विवरण नहीं था। वह वास्तव में भारत की रणनीतिक स्वायत्तता का एक डिजिटल मेनिफेस्टो था। इस मिशन की आत्मा 38,000 से अधिक ग्राफिक्स प्रोसेसिंग यूनिट्स के उस विशाल बुनियादी ढांचे में बसती है, जिसे भारत अपने बल पर खड़ा करने जा रहा है। प्रधानमंत्री का संदेश अत्यंत स्पष्ट और ओजपूर्ण था कि भारत अब केवल उस सेवा क्षेत्र के सहारे संतुष्ट नहीं रहेगा, जिसने उसे वैश्विक पहचान तो दी, लेकिन उसे तकनीक का निर्माता बनाने के बजाय उपभोक्ता ही बनाए रखा।

अब समय आ गया है कि भारत दुनिया का एआई मस्तिष्क बने। प्रधानमंत्री की दृष्टि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता केवल कार्यक्षमता बढ़ाने का कोई निर्जीव साधन नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय का एक सशक्त उपकरण है। यह तकनीक जब सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय के भारतीय दर्शन से मिलती है, तो वह केवल एक विशिष्ट वर्ग की विलासिता नहीं रह जाती, बल्कि समाज के अंतिम छोर पर खड़े व्यक्ति के जीवन में प्रकाश लाने का माध्यम बन जाती है।

तकनीक का लोकतंत्रीकरण

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा हमेशा से कंप्यूटिंग शक्ति की अत्यधिक लागत रही है। लेकिन भारत ने इस बाधा को एक क्रांतिकारी प्रहार से ध्वस्त कर दिया है। इंडिया एआई कंप्यूट पोर्टल के माध्यम से देश के प्रतिभावान युवाओं और नवाचारी संस्थाओं को मात्र 67 रुपये प्रति घंटे की दर से जीपीयू की उपलब्धता सुनिश्चित कराई गई है। यह राशि एक डॉलर से भी कम है, जो आज के समय में एक कप कॉफी की कीमत से भी कम बैठती है।

यह कंप्यूटिंग का वह लोकतंत्रीकरण है, जो तकनीक को महलों से निकालकर झोपड़ियों और छोटे शहरों के क्यूबिकल्स तक पहुंचा देता है। जब तकनीक का ईंधन इतना सस्ता हो जाता है, तो नवाचार के लिए पूंजी की मोहताज खत्म हो जाती है। यह सुनिश्चित करता है कि अगला बड़ा एआई मॉडल किसी विदेशी बोर्डरूम की उपज

नहीं, बल्कि भारत के किसी दूरदराज के कस्बे में बैठे एक जुनूनी युवा के मस्तिष्क की रचना होगी। यही वह समावेशी विकास है जो भारत को वैश्विक दक्षिण की सबसे बुलंद और विश्वसनीय आवाज बनाता है।

वैश्विक दिग्गजों की दृष्टि में उभरता भारत

सम्मेलन के मंच से जब दुनिया के सबसे प्रभावशाली टेक दिग्गजों ने अपनी बात रखी, तो उनके शब्दों में भारत के प्रति केवल प्रशंसा नहीं, बल्कि एक गहरा सम्मान और साझेदारी का भाव था। सैम ऑल्टमैन ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया कि भारत अब उनके मंच का दूसरा सबसे बड़ा उपयोगकर्ता आधार है। उनके अनुसार, भारत के पास वह पैमाना, वह लोग और वह संक्रामक उत्साह है जो उसे एक पूर्ण एआई अग्रणी बनाने की क्षमता देता है। ऑल्टमैन का यह मानना कि भारत केवल एक बाजार नहीं बल्कि एक अपरिहार्य साझेदार है, वैश्विक कूटनीति के बदलते स्वरूप को दर्शाता है।

इसी क्रम में सुंदर पिचाई ने भारत की इस यात्रा को असाधारण बताया। उन्होंने एक गंभीर चेतावनी भी दी कि हमें डिजिटल विभाजन को एआई विभाजन में बदलने से रोकना होगा। गूगल ने भारतीय भाषाओं की विविधता को समझते हुए 22 भाषाओं के लिए विशिष्ट भाषाई उपकरण विकसित करने का जो संकल्प लिया, वह तकनीकी समावेशिता की दिशा में एक बड़ा कदम है। वहीं, सत्या नडेला ने जब भारत के क्लाउड इन्फ्रास्ट्रक्चर में 17.5 अरब डॉलर के निवेश और 2030 तक 2 करोड़ भारतीयों को कौशल प्रदान करने की घोषणा की, तो यह स्पष्ट हो गया कि वैश्विक निवेशकों के लिए भारत अब पहली प्राथमिकता बन चुका है। नडेला ने भारत के ई-श्रम प्लेटफॉर्म की सराहना करते हुए इसे डिजिटल सार्वजनिक प्रणालियों के लिए एक वैश्विक मानक करार दिया।

कूटनीति की छाया और नैतिक द्वंद्व

यद्यपि यह शिखर सम्मेलन तकनीक और अर्थशास्त्र के इर्द-गिर्द बुना गया था, परंतु वैश्विक राजनीति और नैतिकता के प्रश्न भी यहां पूरी प्रखरता के साथ उपस्थित थे। सम्मेलन के सबसे प्रतीक्षित वक्ताओं में से एक, बिल गेट्स का अंतिम समय में पीछे हट जाना चर्चा का विषय बना रहा। खबरों के गलियारों में यह चर्चा गर्म थी कि हालिया एपस्टीन फाइलों के विवाद और उसमें उनके नाम के उल्लेख ने उन्हें इस प्रतिष्ठित मंच से दूर रहने पर विवश कर दिया।

यह घटनाक्रम हमें याद दिलाता है कि तकनीक की दुनिया कितनी भी उज्ज्वल क्यों न दिखे, लेकिन उसके पीछे छिपे रसूखदारों के आचरण और उनके नैतिक पतन की छाया कभी-कभार सबसे पवित्र माने जाने वाले मंचों को भी धुंधला कर देती है। हालांकि, गेट्स की अनुपस्थिति की कमी को फ्रांस के राष्ट्रपति इमैनुएल मैक्रों और ब्राजील के राष्ट्रपति लूला डी सिल्वा की भागीदारी ने पूरा कर दिया। उनकी उपस्थिति ने इस तकनीकी विमर्श को एक गहरा राजनीतिक और कूटनीतिक आयाम प्रदान किया, जिससे यह सिद्ध हुआ कि एआई अब केवल इंजीनियरों का विषय नहीं, बल्कि राष्ट्राध्यक्षों की प्राथमिकता बन चुका है।

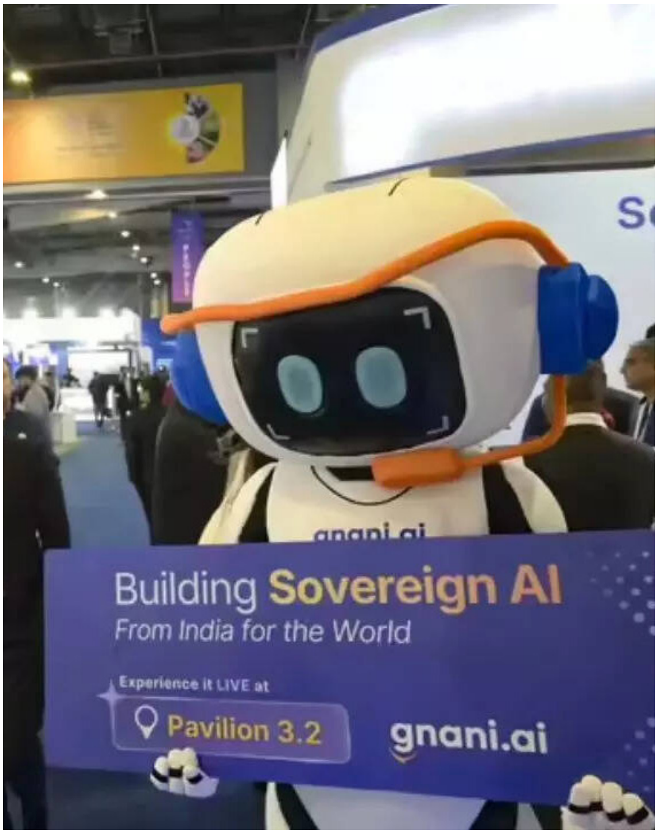

नवाचार का जीवंत उत्सव

भारत मंडपम का प्रदर्शनी कक्ष उन 600 से अधिक स्टार्टअप्स की ऊर्जा से लबालब था, जो कागजी योजनाओं के बजाय धरातल पर उतरे समाधान प्रस्तुत कर रहे थे। यहाँ एआई केवल एक शब्द नहीं, बल्कि एक हकीकत के रूप में सांस ले रहा था। स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में क्योर एआई जैसे नवाचारों ने दिखाया कि कैसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणालियों में टीबी जैसे रोगों की पहचान में क्रांतिकारी बदलाव ला सकती है।

कृषि के क्षेत्र में, जहां भारत की आत्मा बसती है, वहां एआई-सेंसर और रीयल-टाइम डेटा विश्लेषण के माध्यम से मिट्टी की जांच और खेती की लागत घटाने के अद्भुत प्रयोग देखने को मिले। सबसे सुखद अनुभव भाषाई सेतुओं का था। भारत की जो भाषाई विविधता कभी संचार में बाधा मानी जाती थी, अब वह एआई के लिए डेटा की एक समृद्ध खान बन गई है। 22 भारतीय भाषाओं के बीच तत्काल अनुवाद के उपकरणों ने भाषाई सीमाओं को वस्तुतः समाप्त कर दिया है, जिससे एक तमिल भाषी किसान अब बिना किसी झिझक के एक कश्मीरी बागवान से संवाद कर सकता है।

डेटा की शक्ति और सभ्यतागत चुनौती

भारत आज दुनिया का 20 प्रतिशत डेटा उत्पन्न करता है। हमारे पास न केवल डेटा का विशाल भंडार है, बल्कि वैश्विक स्तर पर एआई कौशल की सबसे गहरी पैठ भी है। 12 स्वदेशी लार्ज लैंग्वेज मॉडल्स पर चल रहा काम इस बात की गारंटी है कि भारत भविष्य में केवल विदेशी एल्गोरिदम का उपभोक्ता बनकर नहीं रहेगा। झारखंड से आई 23 वर्षीय जूनियर इंजीनियर तसनीम खान की आंखों में चमकता आत्मविश्वास उस नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है, जो मानती है कि अब भारत केवल एक उपभोक्ता नहीं, बल्कि एक रचयिता है।

अंततः, भारत की यह एआई यात्रा केवल तकनीकी नहीं है, बल्कि यह एक सभ्यतागत चुनौती है। प्रधानमंत्री ने जब मानव-केंद्रित एआई की वकालत की, तो वे उस संतुलन की ओर इशारा कर रहे थे जहाँ मशीनें इंसान पर हावी न हों, बल्कि वे मानव गरिमा और लोकतांत्रिक मूल्यों को अधिक सशक्त बनाएं। यद्यपि गलगोटिया विश्वविद्यालय द्वारा प्रदर्शित रोबोटिक डॉग के विवाद ने कुछ समय के लिए इस भव्य आयोजन की प्रतिष्ठा पर प्रश्नचिह्न लगाए, जहाँ एक विदेशी मॉडल को स्वदेशी नवाचार के रूप में प्रस्तुत करने की चूक हुई। परंतु एक बड़े फलक पर देखा जाए, तो यह घटना केवल एक छोटी सी बाधा मात्र थी। जब भारत मंडपम की रोशनियाँ धीरे-धीरे मंद हुईं, तब तक दुनिया को यह संदेश जा चुका था कि भारतीय एआई दृष्टि अब कोई कोरी कल्पना नहीं, बल्कि एक ठोस यथार्थ है। भारत न केवल तकनीक का ढांचा खड़ा कर रहा है, बल्कि वह इसके नैतिक और मानवीय चरित्र को भी परिभाषित कर रहा है। आने वाले समय में, यही मानवीय दृष्टि भारत को विश्व की अगली तकनीकी महाशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करेगी। ●

नैरेटिव बनाम हकीकत

पश्चिमी मीडिया और वैश्विक सूचकांकों द्वारा भारतीय पत्रकारिता को अक्सर एक 'सिकुड़ते दायरे' के रूप में चित्रित किया जाता है। 'द इकोनॉमिस्ट' जैसे प्रकाशनों के रटे-रटाए निष्कर्षों से परे, यह लेख भारतीय मीडिया की भाषाई विविधता, डिजिटल क्रांति और उस जीवंत 'लोकतांत्रिक शोर' का विश्लेषण करता है।

हाल ही में एक प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय पत्रिका 'द इकोनॉमिस्ट' में भारत की मीडिया स्वतंत्रता पर एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसका निष्कर्ष एक रटा-रटाया पश्चिमी विलाप है—'भारत में पत्रकारिता के लिए स्पेस सिकुड़ रही है।' यह कोई नई बात नहीं है- पिछले कुछ वर्षों से पश्चिमी मीडिया संस्थानों और कुछ वैश्विक सूचकांकों ने भारत को एक 'दबावग्रस्त लोकतंत्र' के रूप में चित्रित करने का अभियान सा छेड़ रखा है। वे अपनी उदारवादी लोकतांत्रिक कसौटियों पर भारत जैसे विशाल और विविध समाज को परखने का प्रयास करते हैं, लेकिन अक्सर वे भारतीय लोकतंत्र की अंतर्निहित शक्ति और उसकी जटिलता को समझने में विफल रहते हैं।

यह समझना अनिवार्य है कि भारत में मीडिया की स्वतंत्रता का मूल्यांकन केवल वाशिंगटन या लंदन में बैठकर तय किए गए मानकों से नहीं किया जा सकता। इसके लिए हमें लुटियंस दिल्ली के वातानुकूलित कमरों से बाहर निकलकर देश की भाषाई विविधता, सूचना क्रांति और उस 'लोकतांत्रिक शोर' को सुनना होगा, जो दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र की असली धड़कन है।

विविधता का महासागर: जहां आवाजों का अंत नहीं

यदि पश्चिमी दावों को सच मान लिया जाए कि भारत में मीडिया की आजादी खत्म हो रही है, तो सबसे बड़ा प्रश्न यह उठता है कि भारत में सूचना तंत्र का इतना अभूतपूर्व विस्तार कैसे संभव है? आज भारत दुनिया का सबसे बड़ा और सबसे प्रतिस्पर्धी मीडिया बाजार है। यहां 1,40,000 से अधिक पंजीकृत समाचार पत्र हैं, 900 से अधिक सैटेलाइट टीवी चैनल हैं और अनगिनत डिजिटल पोर्टल सक्रिय हैं।

पश्चिमी देशों में अक्सर दो या तीन बड़े कॉरपोरेट समूह पूरे सूचना तंत्र पर एकाधिकार रखते हैं, लेकिन भारत में क्षेत्रीय मीडिया की ताकत इतनी विराट है कि कोई भी 'एक नैरेटिव' पूरे देश पर हावी नहीं हो सकता। तमिलनाडु के एक गांव से लेकर लद्दाख की वादियों तक, हर भाषाई और सांस्कृतिक अस्मिता के पास अपना अखबार और अपना चैनल है। यह विविधता किसी केंद्रीकृत नियंत्रण का नहीं, बल्कि एक जीवंत और बहुलतावादी लोकतंत्र का प्रमाण है। जब आवाजों का ऐसा महासागर हो, तो वहां 'स्पेस सिकुड़ने' का तर्क निराधार प्रतीत होता है।

आलोचना की जीवंत परंपरा: लोकतंत्र का रक्षा कवच

मनोज कुमार

भारतीय मीडिया की सबसे बड़ी विशेषता उसकी 'आलोचनात्मक प्रवृत्ति' है। संसद के गलियारों से लेकर गांव की चौपाल तक, सरकारी नीतियों पर जितनी तीखी बहस भारत में होती है, वैसी शायद ही किसी अन्य विकासशील देश में संभव हो। प्राइम-टाइम बहसों में सत्तापक्ष के प्रवक्ताओं से कड़े सवाल पूछना, अखबारों के संपादकीय में सरकार की आर्थिक और विदेश नीतियों की धज्जियां उड़ाना और कार्टूनों के माध्यम से तीखा प्रहार करना—यह भारतीय पत्रकारिता की दैनिक दिनचर्या है।

डिजिटल मीडिया के उदय ने तो आलोचना के दायरे को और भी

विस्तृत कर दिया है। आज यूट्यूब और पॉडकास्ट के माध्यम से स्वतंत्र पत्रकार सीधे जनता से संवाद कर रहे हैं। यदि वास्तव में दमन का माहौल होता, तो क्या ये स्वतंत्र आवाजें इतनी प्रखरता से गूंज पातीं? पश्चिमी विश्लेषक अक्सर कुछ कानूनी कार्यवाहियों को 'प्रेस की हत्या' करार देते हैं, लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि भारत जैसे संवेदनशील समाज में 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' और 'जवाबदेही' के बीच एक महीन रेखा खींचना कितना आवश्यक है।

कानूनी ढांचा: नियमन बनाम दमन

पश्चिमी लेखों में अक्सर भारतीय मानहानि कानून या नए आईटी नियमों को दमनकारी उपकरणों के रूप में पेश किया जाता है। यहां यह स्पष्ट है कि कोई भी स्वतंत्रता असीमित नहीं हो सकती। भारत एक ऐसा समाज है जहां एक गलत सूचना या 'फेक न्यूज़' सांप्रदायिक दंगे भड़का सकती है या राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे में डाल सकती है। ऐसे में, सरकार द्वारा फेक न्यूज़ और दुष्प्रचार से निपटने के लिए नियामक ढांचा बनाना राज्य का संवैधानिक दायित्व है।

महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं है कि कानून मौजूद हैं या नहीं, बल्कि यह है कि क्या वे लोकतांत्रिक प्रक्रिया का हिस्सा हैं। भारत की स्वतंत्र न्यायपालिका अक्सर इन कानूनों के दुरुपयोग पर लगाम लगाती है। केवल कानूनों की मौजूदगी को 'प्रेस की स्वतंत्रता का अंत' मान लेना एक सतही और एकांगी निष्कर्ष है। पश्चिमी जगत को यह समझना होगा कि भारत की चुनौतियां उनकी चुनौतियों से भिन्न हैं।

एक वैश्विक चुनौती, न कि भारतीय समस्या

'द इकोनॉमिस्ट' जैसे प्रकाशन अक्सर भारतीय मीडिया पर कॉरपोरेट घरानों के प्रभाव का रोना रोते हैं। लेकिन क्या यह समस्या केवल भारत की है? क्या अमेरिका में 'वॉशिंगटन पोस्ट' या 'फॉक्स न्यूज़' कॉरपोरेट स्वामित्व से मुक्त हैं? दुनिया के लगभग हर लोकतंत्र में विज्ञापन आधारित मीडिया मॉडल ने संपादकीय स्वतंत्रता और आर्थिक हितों के बीच एक द्वंद्व पैदा किया है।

भारत में भी यह चुनौती मौजूद है, लेकिन इसकी काट के रूप में यहां 'क्राउड-फंडेड' पत्रकारिता और छोटे स्वतंत्र डिजिटल प्लेटफॉर्म का एक नया पारिस्थितिकी तंत्र विकसित हुआ है। भारतीय दर्शक अब केवल बड़े नेटवर्कों पर निर्भर नहीं हैं; वे वैकल्पिक आवाजों को समर्थन दे रहे हैं। यह 'बॉटम-अप' बदलाव भारत की मीडिया स्वतंत्रता को नई मजबूती प्रदान कर रहा है।

डिजिटल क्रांति: सूचना का लोकतंत्रीकरण

पिछले एक दशक में भारत में आई डिजिटल क्रांति ने 'प्रेस फ्रीडम' की परिभाषा ही बदल दी है। आज हर स्मार्टफोन धारक एक 'सिटिजन जर्नलिस्ट' है। सरकार या प्रशासन की किसी भी खामी को क्षण भर में वायरल किया जा सकता है। यूट्यूब और सोशल मीडिया ने उन आवाजों को मंच दिया है जिन्हें पारंपरिक मीडिया में जगह नहीं मिलती थी।

यह डिजिटल सार्वजनिक क्षेत्र इतना विशाल है कि इसे नियंत्रित करना किसी भी सत्ता के लिए असंभव है। यह बदलाव इस बात का प्रमाण है कि भारत में सूचना का प्रवाह अब कुछ चुनिंदा संस्थानों की जागीर नहीं रह गया है, बल्कि यह आम जनता के हाथों में पहुंच चुका है। पश्चिमी विश्लेषण अक्सर इस 'डिजिटल सशक्तिकरण' को नजरअंदाज कर देते हैं क्योंकि यह उनके 'विक्टिमहुड' (पीड़ित होने) के नैरेटिव में फिट नहीं बैठता।

पश्चिमी दृष्टिकोण का वैचारिक पूर्वाग्रह

हमें यह स्वीकार करना होगा कि भारत पर पश्चिमी विश्लेषण अक्सर एक 'श्रेष्ठता ग्रंथि' से ग्रस्त होते हैं। वे भारत को उसी पुराने औपनिवेशिक चश्मे से देखते हैं, जहां उन्हें लगता है कि लोकतंत्र का पाठ केवल पश्चिम ही पढ़ा सकता है। वे भारत की तीव्र राजनीतिक प्रतिस्पर्धा, भाषाई अस्मिता और विकासशील समाज की विशिष्टताओं को समझे बिना निष्कर्ष निकाल देते हैं।

भारत के लिए मीडिया स्वतंत्रता कोई पश्चिमी आयातित वस्तु नहीं है, बल्कि यह हमारे संविधान की आत्मा है। आपातकाल (1975) के उस काले दौर में भी भारतीय मीडिया ने जिस साहस का परिचय दिया था, वह इस बात का प्रमाण है कि भारतीय प्रेस की जड़ें बहुत गहरी हैं।

आत्ममंथन: आदर्शवाद और यथार्थ का द्वंद्व

यद्यपि हम पश्चिमी नैरेटिव को खारिज करते हैं, लेकिन यह भी सच है कि भारतीय मीडिया को पूरी तरह दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता। आज मीडिया के सामने कुछ वास्तविक चुनौतियां हैं:

1. **टीआरपी की अंधी दौड़:** जिसने खबरों को सर्कस और गंभीर विमर्श को सनसनीखेज बना दिया है।
2. **वैचारिक ध्रुवीकरण:** जहां पत्रकार अब रिपोर्टर न रहकर किसी विचारधारा के पैरोकार बन गए हैं।
3. **विश्वसनीयता का संकट:** 'पेड न्यूज़' और 'फेक न्यूज़' के मिश्रण ने आम नागरिक के भरोसे को हिलाया है।

इन समस्याओं का समाधान पश्चिमी देशों द्वारा जारी की गई रैंकिंग में नहीं, बल्कि भारतीय मीडिया के भीतर से होने वाले आत्ममंथन में है। पत्रकारिता को अपने पेशेवर मानकों, तथ्यों के प्रति निष्ठा और सार्वजनिक हित को पुनर्जीवित करना होगा।

जीवंत लोकतंत्र की अनवरत यात्रा

भारत में मीडिया स्वतंत्रता पर होने वाली वैश्विक बहस वास्तव में हमारे लोकतंत्र की जीवंतता का ही एक हिस्सा है। आलोचना आवश्यक है, क्योंकि वह व्यवस्था को सजग रखती है। लेकिन किसी भी विश्लेषण को संतुलित और यथार्थवादी होना चाहिए। भारत का मीडिया परिदृश्य न तो पूरी तरह संकट में है और न ही पूरी तरह निष्कलंक; यह एक निरंतर विकासशील, ऊर्जावान और बहस से भरा हुआ क्षेत्र है।

अंततः, भारत में प्रेस की स्वतंत्रता को किसी अंतरराष्ट्रीय रैंकिंग से नहीं, बल्कि देश के 140 करोड़ नागरिकों के उस भरोसे से मापा जाना चाहिए, जो वे प्रतिदिन अपनी सुबह की चाय के साथ अखबार पढ़ते हुए या रात को टीवी देखते हुए व्यक्त करते हैं। पश्चिमी नैरेटिव भले ही 'सिकुड़ती स्पेस' का विलाप करे, लेकिन भारत का यथार्थ यह है कि यहां सूचना की लहरें पहले से कहीं अधिक ऊंची और मुखर हैं। भारत का लोकतंत्र शोर से नहीं डरता, क्योंकि यही शोर उसकी सबसे बड़ी ताकत है और यही एक सशक्त, स्वाभिमानी और स्वतंत्र लोकतंत्र की सबसे बड़ी पहचान है। ●

नया नेपाल युवाओं का शंखनाद

पश्चिम एशिया के आकाश में मंडराते युद्ध के बादल अब सुदूर देशों की रसोई तक पहुंच चुके हैं। यह लेख विश्लेषण करता है कि कैसे तेहरान का तनाव दिल्ली और ढाका के चूल्हों को ठंडा कर, आम नागरिक की आजीविका पर प्रहार कर रहा है।

अनवर हुसैन

नेपाल की राजनीति, जो लंबे समय तक ऊँचे पर्वतों और दुर्गम घाटियों के बीच राजनीतिक अस्थिरता की धुंध में लिपटी रही, आज एक ऐसी नई सुबह का साक्षात्कार कर रही है जिसने इतिहास की पुरानी लिपियों को सदा के लिए मिटा दिया है। वर्ष 2026 के इन आम चुनावों के परिणाम केवल मतपेटियों से निकले आंकड़े नहीं हैं, बल्कि ये उस सामूहिक चेतना का विस्फोट हैं जिसे 'बालेन्द्र शाह की लहर' ने जन्म दिया है। हिमालय की कंदराओं से लेकर तराई के मैदानों तक, इस बार जो गर्जना सुनाई दी है, उसने नेपाल के सत्रह वर्षों के लोकतांत्रिक इतिहास को एक नया अर्थ प्रदान किया है। यह केवल एक नई सरकार का गठन नहीं है, बल्कि यह नेपाल में लोकतंत्र की 'दूसरी वापसी' का वह पावन क्षण है, जहाँ सत्ता की चाभी पारंपरिक दिग्गजों के हाथों से फिसलकर एक नवीन पीढ़ी के स्वप्नों में जा समाई है।

जनादेश का महासागर: आरएसपी की ऐतिहासिक विजय

नेपाल के लोकतांत्रिक सफर में वर्ष 2008 का वह समय मील का पत्थर माना जाता था जब राजशाही के अंत के बाद माओवादियों ने एक बड़ा जनादेश प्राप्त किया था। परंतु, राष्ट्रीय स्वतंत्र पार्टी (आरएसपी) ने इस बार जो सफलता अर्जित की है, उसने माओवादियों के उस दस साल लंबे सशस्त्र संघर्ष से उपजी लहर को भी बौना कर दिया है। निचले सदन की 275 सीटों में से 183 सीटों पर विजय प्राप्त करना किसी चमत्कार से कम नहीं है। बहुमत के लिए आवश्यक 138 के आंकड़े को पार करते हुए आरएसपी अब दो-तिहाई बहुमत के उस जादुई शिखर के अत्यंत निकट है, जहाँ से वह देश के संविधान और नियति को नई दिशा देने का सामर्थ्य रखती है।

यह विजय इसलिए भी विशिष्ट है क्योंकि इसमें 'फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट' प्रणाली की 125 सीटों के साथ-साथ आनुपातिक प्रतिनिधित्व की 58 सीटें भी सम्मिलित हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि पार्टी की स्वीकार्यता केवल कुछ क्षेत्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसने पूरे राष्ट्र के भूगोल और हृदय को स्पर्श किया है। नेपाल के चुनावी इतिहास में पहली बार क्षेत्रीय और जातीय विभाजनों की दीवारें ढहती हुई प्रतीत हुई हैं। वह देश, जो सदा 'पहाड़' बनाम 'मधेश' की वैचारिक जंग में उलझा रहता था, इस बार उन संकीर्णताओं से ऊपर उठकर केवल विकास और सुशासन के मुद्दों पर एकजुट हुआ है।

बालेन्द्र शाह: तराई की माटी से शीर्ष पद तक का सफर

इस पूरी क्रांति के महानायक बालेंद्र शाह (बालेन) का उदय नेपाल की सामाजिक संरचना में एक बड़े बदलाव का संकेत है। मधेशी और मैथिली समाज से जुड़ी अपनी जड़ों के साथ बालेन ने उस मिथक को तोड़ दिया है कि नेपाल के शीर्ष पद पर केवल एक विशिष्ट वर्ग या क्षेत्र का ही अधिकार हो सकता है। यद्यपि अतीत में मैदानी क्षेत्रों से कुछ नेता उपप्रधानमंत्री के पदों तक पहुँचे, परंतु प्रधानमंत्री के रूप में बालेन का मार्ग प्रशस्त होना समावेशी लोकतंत्र की सबसे सुंदर तस्वीर प्रस्तुत करता है।

बालेन केवल एक राजनेता नहीं, बल्कि वे उस 'जेन ज़ी' आंदोलन और युवा चेतना के प्रतीक हैं जिसने पुरानी व्यवस्था की जड़ता को चुनौती दी है। चुनाव से मात्र दो महीने पहले जिस पार्टी में वे सम्मिलित हुए, उसे अपने व्यक्तित्व के तेज से उन्होंने दो-तिहाई बहुमत तक पहुँचा दिया। यह उनकी नेतृत्व क्षमता और जनता के साथ उनके गहरे जुड़ाव का ही परिणाम है कि उन्होंने झापा-05 जैसी प्रतिष्ठित सीट पर केपी शर्मा ओली जैसे दिग्गज नेता को लगभग पचास हजार मतों के भारी अंतर से पराजित कर दिया। यह पराजय केवल एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि उस पुरानी कार्यशैली की है जो गठबंधन और अवसरवादिता की राजनीति पर जीवित थी।

राजनीतिक अस्थिरता का अंत

नेपाल की सबसे बड़ी त्रासदी उसकी राजनीतिक अस्थिरता रही है। 2008 के बाद से कोई भी प्रधानमंत्री या गठबंधन अपना पाँच वर्ष का कार्यकाल पूर्ण नहीं कर पाया। सत्ता की खींचतान और मजबूरी में बने अपवित्र गठबंधनों के कारण संविधान निर्माण से लेकर राष्ट्रीय सुरक्षा और आर्थिक विकास जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे सदा अधर में लटके रहे। आरएसपी की यह प्रचंड विजय इस अस्थिरता के कालखंड पर पूर्ण विराम लगाती दिखती है।

पहली बार नेपाल की संसद में एक ऐसी सरकार होगी जिसके पास स्पष्ट और सशक्त बहुमत है। अब नीतियों के निर्माण में वैचारिक मतभेदों की बाधाएं नहीं होंगी और न ही छोटे दलों की ब्लैकमेलिंग का भय रहेगा। यह स्थिरता नेपाल के आर्थिक विकास, सामाजिक सुरक्षा और विदेश नीति को एक नई और निश्चित दिशा प्रदान करेगी। इसे लोकतंत्र की 'दूसरी वापसी' इसलिए कहा जा रहा है क्योंकि 2008 में राजशाही तो समाप्त हुई थी, परंतु सत्ता का चरित्र वही पुराना रहा। अब, सत्रह वर्षों के लंबे और उथल-पुथल भरे संक्रमण के बाद, नेपाल वास्तविक बहुदलीय लोकतंत्र के उस स्वरूप में प्रवेश कर रहा है जहाँ जनता की आकांक्षाएं ही सर्वोपरि हैं।

तुलना और चुनौतियां: बांग्लादेश के दर्पण में नेपाल

चुनाव पूर्व आरएसपी की तुलना अक्सर बांग्लादेश की नेशनल सिटिज़न्स पार्टी से की जा रही थी। आलोचकों को यह भय था कि जिस प्रकार बांग्लादेश में युवा नेतृत्व अपनी महत्वाकांक्षाओं और प्रशासनिक अनुभव की कमी के कारण असफल हुआ, वैसा ही हश्र नेपाल में भी हो सकता है। परंतु बालेन ने उन तमाम आशंकाओं को निर्मूल सिद्ध कर दिया है। उन्होंने न केवल जनभावना को अपने पक्ष में मोड़ा, बल्कि पुराने नेतृत्व की विफलता को अपने पक्ष में एक सशक्त तर्क के रूप में प्रस्तुत किया।

हालांकि, इस ऐतिहासिक जीत के साथ चुनौतियों का एक विशाल हिमालय भी उनके सम्मुख खड़ा है। काठमांडू के मेयर के रूप में मात्र चार वर्ष का प्रशासनिक अनुभव रखने वाले बालेन के लिए पूरे राष्ट्र का शासन संभालना एक कठिन परीक्षा होगी। रोजगार के अवसर सृजित करना, सरकारी कामकाज में पारदर्शिता लाना और विशेषकर पश्चिम एशिया के संघर्षों के बीच विदेश में रह रहे नेपाली नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करना ऐसी प्राथमिकताएं हैं जिन पर उन्हें तत्काल कार्य करना होगा। जिस युवा वर्ग ने उन्हें इस शिखर तक पहुँचाया है, उनकी आकांक्षाएं और धैर्य दोनों ही सीमा पर हैं। यदि वादे समय पर पूरे नहीं हुए, तो यही युवा शक्ति सबसे प्रखर विपक्ष के रूप में सड़कों पर उतरने में देर नहीं करेगी।

लोक-लुभावनवाद और नेतृत्व की परिपक्वता

बालेन्द्र शाह की शासन शैली पर अक्सर लोक-लुभावनवाद (पॉपुलिज्म) के आरोप लगते रहे हैं। मेयर के रूप में उनके कुछ आक्रामक निर्णयों—जैसे फुटपाथ खाली कराना और अवैध ठेलों-खोमचों पर की गई कार्रवाई—ने उन्हें एक 'एंग्री यंग मैन' की छवि प्रदान की। एक राष्ट्रीय नेता और प्रधानमंत्री के रूप में अब उन्हें इस आक्रामकता और धैर्य के बीच एक बारीक संतुलन बनाना होगा। लोक-लुभावन नेता अक्सर नियमों की नई व्याख्या करते हैं और विपक्ष की अनदेखी करते हैं, परंतु एक परिपक्व लोकतंत्र में असहमति का सम्मान भी अनिवार्य है। बालेन की सबसे बड़ी चुनौती अपनी उसी आक्रामक ऊर्जा को सुविचारित और दूरगामी नीतियों में बदलने की होगी।

नेपाल की नई नियति का शंखनाद

नेपाल के लोगों ने 1950 की पूर्ण राजशाही से लेकर 1960 की निर्दलीय पंचायत व्यवस्था और 1990 की संवैधानिक राजशाही से होते हुए 2008 के गणतंत्र तक का एक लंबा और कष्टप्रद सफर तय किया है। 2026 के इन चुनावी परिणामों को इस विकासवादी यात्रा के सबसे उज्ज्वल अध्याय के रूप में देखा जाना चाहिए। यह चुनाव इस बात का प्रमाण है कि नेपाल का मतदाता अब जागरूक हो चुका है और वह पुराने चेहरों के खोखले वादों के स्थान पर नई पीढ़ी की दृष्टि पर भरोसा करने का साहस रखता है।

बालेंद्र शाह और रबी लमिछाने जैसे नेताओं के कंधों पर अब उस 'नया नेपाल' के निर्माण का उत्तरदायित्व है जिसका स्वप्न पीढ़ियों से देखा जा रहा था। यदि यह नेतृत्व आपसी मतभेदों से बचकर जनहित को सर्वोपरि रखता है, तो नेपाल न केवल दक्षिण एशिया में बल्कि पूरे विश्व में एक सफल लोकतांत्रिक परिवर्तन के उदाहरण के रूप में उभरेगा। यह नेपाल के लोकतंत्र का पुनर्जन्म है, और इस बार इसकी जड़ें केवल पहाड़ों में नहीं, बल्कि जन-जन के विश्वास की गहराई में जमी हुई हैं। •

रसोई पर भारी जंग

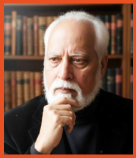

सच्चिदानंद

एक ही भय व्याप्त - ईंधन का अभाव

यह संकट उस उभरती हुई अर्थव्यवस्था पर भी प्रहार कर रहा है जिसे हम गिग इकोनॉमी कहते हैं। हजारों की संख्या में डिलीवरी करने वाले युवा और छोटे खाद्य उद्यमी, जिन्होंने अभी-अभी अपने सपनों को पंख दिए थे।

आधुनिक विश्व की परस्पर जुड़ी अर्थव्यवस्थाओं में एक महाद्वीप पर होने वाला विस्फोट दूसरे महाद्वीप की रसोई में सन्नाटा पसरा सकता है। आज जब पश्चिम एशिया के आकाश में युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं और ईरान के विरुद्ध सैन्य प्रहारों ने वैश्विक ऊर्जा गलियारों को हिला दिया है, तो इसका सबसे प्रत्यक्ष और पीड़ादायक प्रभाव दक्षिण एशिया के आम जनमानस पर दिखाई दे रहा है। तेहरान से हजारों किलोमीटर दूर दिल्ली की सड़कों पर सजे खान-पान के अड्डों से लेकर ढाका के विश्वविद्यालयों और कराची के परिवहन तंत्र तक, हर जगह एक ही भय व्याप्त है—ईंधन का अभाव। यह केवल रणनीतिक विमर्श का विषय नहीं है, बल्कि यह उस अस्तित्वगत संकट की आहट है जो सीधे तौर पर एक साधारण नागरिक की थाली और उसकी आजीविका से जुड़ी है।

नई दिल्ली के साकेत क्षेत्र में सड़क किनारे एक छोटा सा भोजनालय चलाने वाले प्रहलाद सिंह की आँखों में झलकता भय आज करोड़ों भारतीयों की साझा चिंता का प्रतिबिंब है। अपने मोबाइल फोन पर द्रवीकृत पेट्रोलियम गैस की कमी और आपूर्ति बाधित होने की खबरों को पढ़ते हुए प्रहलाद को भविष्य धुंधला नजर आता है। उनके जैसे छोटे उद्यमियों के लिए गैस का एक सिलेंडर केवल ईंधन नहीं, बल्कि उनके परिवार के भरण-पोषण की धुरी है। युद्ध की गूंज उनके लिए किसी वैश्विक कूटनीति का हिस्सा नहीं, बल्कि इस सवाल का जवाब है कि क्या तीन दिन बाद उनका चूल्हा जल पाएगा?

यह संकट केवल प्रहलाद तक सीमित नहीं है। भारत के महानगरों से लेकर कस्बों तक के कैंटीन, रेस्तरां और होटल उद्योग आज इस अनिश्चितता की भेंट चढ़ रहे हैं। ऊर्जा आपूर्ति में आए इस व्यवधान ने घरेलू गैस सिलेंडरों की कीमतों में लगभग साठ रुपये और व्यावसायिक सिलेंडरों में एक सौ पंद्रह रुपये तक की वृद्धि कर दी है। मध्यम और निम्न आय वर्ग के परिवारों के लिए यह आर्थिक बोझ किसी वज्रपात से कम नहीं है, जहाँ बजट की सीमाएं पहले से ही तनी हुई हैं।

दक्षिण भारत के तेलंगाना राज्य से आने वाली खबरें और भी विचलित करने वाली हैं। हैदराबाद के प्रसिद्ध बिरयानी हाउस जैसे प्रतिष्ठान, जो अपनी सुगंध और स्वाद के लिए जाने जाते हैं, आज गैस की किल्लत के कारण दोपहर के समय मौन धारण करने पर विवश हैं। रमजान का पवित्र महीना, जो पारंपरिक रूप से उल्लास, इफ्तार की दावतों और व्यापारिक चरमोत्कर्ष का समय होता है, आज ईंधन के अभाव में फीका पड़ता जा रहा है। अलीम अहमद जैसे रेस्तरां मालिक बताते हैं कि जहाँ उन्हें सप्ताह में दस सिलेंडरों की आवश्यकता होती है, वहाँ बड़ी मुश्किल से दो की आपूर्ति हो पा रही है।

बेंगलुरु होटल एसोसिएशन का वक्तव्य इस संकट की गंभीरता को और स्पष्ट करता है। उनका कहना है कि होटलों को एक आवश्यक सेवा माना जाता है, जिस पर वरिष्ठ नागरिक, छात्र और कामकाजी वर्ग भोजन के लिए आश्रित हैं। गैस आपूर्ति का अचानक रुक जाना न केवल एक उद्योग पर प्रहार है, बल्कि यह एक सामाजिक संकट भी है। यह स्थिति दर्शाती है कि कैसे एक क्षेत्रीय युद्ध दुनिया के दूसरे हिस्से के सांस्कृतिक और सामाजिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर सकता है।

दिल्ली के बाहरी इलाकों में संध्या पाल जैसी महिलाएं जो टिफिन सेवा और क्लाउड किचन के माध्यम से स्वावलंबन की राह पर चल रही थीं, आज अपनी प्रार्थनाओं में युद्ध की समाप्ति की कामना कर रही हैं। गैस की अनिश्चितता ने उन्हें अपने मेनू को सीमित करने और केवल जल्दी पकने वाले व्यंजनों तक सिमटने पर मजबूर कर दिया है। यह संकट उस उभरती हुई अर्थव्यवस्था पर भी प्रहार कर रहा है जिसे हम गिग इकोनॉमी कहते हैं। हजारों की संख्या में डिलीवरी करने वाले युवा और छोटे खाद्य उद्यमी, जिन्होंने अभी-अभी अपने सपनों को पंख दिए थे, आज अपनी आजीविका खोने के कगार पर खड़े हैं। उत्तर प्रदेश से लेकर पंजाब तक के शहरों में रिफिल केंद्रों पर लगी लंबी कतारें और लोगों के चेहरों पर अंकित चिंता इस बात का प्रमाण है कि आम नागरिक को आशंका है कि आने वाले दिन और भी कठिन होने वाले हैं। ●

बिकाऊ नहीं है विश्राम

एशिया के सबसे स्वच्छ गांव मावलिननॉन्ग ने पर्यटन के उपभोक्तावाद को ठुकराकर रविवार को 'मौन और प्रार्थना' के लिए चुन लिया है। यह लेख विकास और विश्राम के बीच उस संतुलन की तलाश है, जहाँ आस्था आर्थिक लाभ पर भारी पड़ती है।

प्रो. (डॉ)सतीश चंद्र

मेघालय की ऊंची पहाड़ियों और बादलों की गोद में बसा मावलिननॉन्ग केवल एक भौगोलिक स्थान नहीं है, बल्कि वह प्रकृति और मनुष्य के बीच के उस आदिम समझौते की एक जीवित कविता है, जहाँ स्वच्छता को केवल एक आदत नहीं बल्कि एक संस्कार माना गया है। 'ईश्वर का अपना उद्यान' कहे जाने वाले इस गांव की साफ-सुथरी गलियों और फूलों से लदे आंगनों ने दशकों से पूरी दुनिया को आकर्षित किया है। लेकिन हाल ही में, इस 'एशिया के सबसे साफ गांव' ने एक ऐसा निर्णय लिया है जिसने आधुनिक पर्यटन के 'उपभोक्तावादी' सिद्धांतों को चुनौती दे दी है। वह रविवार, जो किसी भी पर्यटन स्थल के लिए आर्थिक लाभ का चरमोत्कर्ष होता है, अब मावलिननॉन्ग में 'मौन और प्रार्थना' का दिन बन गया है। यह निर्णय उस समय आया है जब पूरी दुनिया 'अधिक' की दौड़ में अंधी है, और मावलिननॉन्ग ने साहसपूर्वक कहा है कि 'थोड़ा विश्राम भी जरूरी है'।

एक असंतुष्ट पर्यटक और गांव का आत्मिक संतोष

भारतीय वायुसेना के अधिकारी डॉ. शैलेंद्र सिंह की कहानी इस विसंगति को बखूबी रेखांकित करती है। शिलॉन्ग से 90 किलोमीटर का लंबा और घुमावदार सफर तय करने के बाद जब वे अपने परिवार के साथ मावलिननॉन्ग पहुंचे, तो उन्हें वहां एशिया की सबसे उत्कृष्ट स्वच्छता तो मिली, लेकिन रविवार होने के कारण गांव के द्वार पर्यटकों के लिए बंद थे। एक पेशेवर जीवन की व्यस्तताओं के बीच रविवार ही वह दिन होता है जब एक व्यक्ति शांति की तलाश में निकलता है, लेकिन मावलिननॉन्ग के लिए भी रविवार वही अर्थ रखता है।

डॉ. सिंह की निराशा और गांव की अडिगता के बीच वह द्वंद्व छिपा है जिसे हम 'शहरी आकांक्षा' और 'ग्रामीण अस्मिता' के रूप में देख सकते हैं। गांव वालों ने 'ग्राहक ही भगवान है' की वैश्विक धारणा को ठुकराकर यह सिद्ध कर दिया है कि उनके लिए उनके अपने ईश्वर की प्रार्थना और समुदाय की मानसिक शांति, किसी भी आर्थिक लाभ से कहीं अधिक मूल्यवान है। यह एक सीमा रेखा है, जिसे मावलिननॉन्ग ने अपनी संस्कृति और पहचान की रक्षा के लिए खींचा है।

जब प्लेग से प्रार्थना तक का सफर शुरू हुआ

मावलिननॉन्ग का स्वच्छता के प्रति यह जुनून अचानक उत्पन्न नहीं हुआ है। इसकी जड़ें उन्नीसवीं सदी के अंत में छिपी हैं, जब खासी हिल्स में ईसाई मिशनरियों का आगमन हुआ था। उस दौर में जब पूरा इलाका प्लेग जैसी महामारियों की चपेट में था, मिशनरियों ने एक जीवन रक्षक मंत्र दिया—'स्वच्छता ही सुरक्षा है'। उन्होंने धर्म के प्रचार के साथ-साथ कपड़े धोने, पानी उबालकर पीने और परिवेश को निर्मल रखने की शिक्षा दी।

धीरे-धीरे, यह अनुशासन मावलिननॉन्ग के निवासियों के रक्त में समा गया। वहां गर्व का विषय कभी अट्टालिकाएं नहीं रहीं, बल्कि एक ऐसा घर रहा जिसके आंगन में कचरे का एक तिनका भी न हो। बच्चों से लेकर बुजुर्गों तक, हर ग्रामीण इस सामूहिक यज्ञ में अपनी आहुति देता है। यहां बांस की टोकरियां केवल कूड़ेदान नहीं हैं, बल्कि वे गांव की अखंडता की प्रहरी हैं। 2003 में जब 'डिस्कवर इंडिया' ने इसे एशिया का सबसे साफ गांव घोषित किया, तब दुनिया ने उस अनुशासन को पहचाना जिसे ये ग्रामीण सदियों से जी रहे थे। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की 'मन की बात' से लेकर आनंद महिंद्रा के प्रशंसात्मक संदेशों तक, यह गांव भारत के लिए एक अनुकरणीय प्रतिमान बन गया।

स्वर्ग में दरार: अनियंत्रित पर्यटन का दंश

प्रसिद्धि अपने साथ अक्सर चुनौतियां भी लेकर आती है। मावलिननॉन्ग के साथ भी यही हुआ। जब पर्यटकों की संख्या प्रतिदिन सैकड़ों तक पहुंच गई, तो गांव की वह शांति भंग होने लगी जिसके लिए वह जाना जाता था। वीकेंड पर आने वाली बसों का शोर, तेज संगीत, और सबसे बढ़कर, पर्यटकों द्वारा फैलाई जाने वाली प्लास्टिक की गंदगी ने गांव के अनुशासन को चोट पहुँचानी शुरू कर दी।

सोशल मीडिया पर वायरल हुआ वह वीडियो, जिसमें एक विदेशी व्यक्ति पर्यटकों को कचरा फैलाने पर फटकार रहा था, मावलिननॉन्ग के भीतर सुलगते आक्रोश का एक छोटा सा हिस्सा मात्र था। इंस्टाग्राम और फेसबुक की आभासी दुनिया में ली जाने वाली सेल्फी के पीछे गांव की वास्तविक आत्मा कराह रही थी। प्लास्टिक पर प्रतिबंध होने के बावजूद, पर्यटकों की लापरवाही ने गांव प्रशासन को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि क्या वे अपनी पहचान खो रहे हैं? इसी मंथन से वह ऐतिहासिक प्रस्ताव निकला जिसे गांव की वार्षिक सभा 'डोरबार' में सर्वसम्मति से पारित किया गया—'रविवार केवल हमारा होगा'।

रविवार का दर्शन: अर्थशास्त्र पर आस्था की विजय

आर्थिक दृष्टि से देखा जाए तो रविवार को प्रवेश बंद करना किसी भी लोकप्रिय पर्यटन स्थल के लिए आत्मघाती कदम लग सकता है। 104 घरों के इस छोटे से गांव में, जहाँ पर्यटन ही आय का मुख्य स्रोत बन चुका है, रविवार की कमाई छोड़ना एक बड़ा त्याग है। पार्किंग शुल्क से लेकर होमस्टे और छोटे कैफे तक, रविवार का दिन सबसे अधिक राजस्व देता है।

लेकिन मावलिननॉन्ग के ग्रामीणों के लिए 'विश्राम' एक अनिवार्य आवश्यकता है। गांव समिति के सचिव बाह प्रेशियस का तर्क अत्यंत प्रभावशाली है कि जब रविवार को गांव वाले सेवाएं नहीं देते, तो पर्यटकों को भी असुविधा होती है और इससे गांव की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचती है। 24 वर्षीय बारिसुख खोंगजी, जो वहां एक छोटा कैफे चलाती हैं, बहुत सरलता से जीवन का सबसे बड़ा दर्शन कह देती हैं—'बाकी छह दिन मैं अपने लिए जीती हूं, और एक दिन भगवान के लिए जरूरी है।' यह वाक्य उस संतुलन की ओर इशारा करता है जिसे आधुनिक दुनिया पूरी तरह विस्मृत कर चुकी है।

स्वच्छता के घेरे के बाहर का यथार्थ

मावलिननॉन्ग की सीमा रेखा के भीतर जो अनुशासन दिखाई देता है, वह उसकी दहलीज लांघते ही धुंधला पड़ने लगता है। गांव के बाहर की सड़कों पर बिखरे प्लास्टिक के रैपर और बोतलें एक कड़वी हकीकत को उजागर करती हैं। यह इस बात का संकेत है कि 'मावलिननॉन्ग मॉडल' अभी भी एक सामूहिक सामुदायिक चेतना पर आधारित है, जिसे बाहरी दुनिया ने पूरी तरह आत्मसात नहीं किया है। पड़ोसी गांव जैसे रिवाई और दावकी भी पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र हैं, लेकिन वहां मावलिननॉन्ग जैसी कठोरता और सामुदायिक भागीदारी का अभाव दिखता है।

आसपास के गांवों के निवासियों का मानना है कि मावलिननॉन्ग की सफलता उसके 'सख्त नियमों' में है। यदि दूसरे गांव भी इस मॉडल को अपनाना चाहते हैं, तो उन्हें केवल पर्यटन पर ध्यान देने के बजाय अपनी जीवनशैली में अनुशासन को उतारना होगा। हालांकि, रविवार को काम बंद रखने की यह स्वस्थ परंपरा अब धीरे-धीरे मेघालय के अन्य पर्यटन स्थलों जैसे नोंगज्रोंग और स्काई व्यू तक भी फैल रही है, जो एक शुभ संकेत है।

पर्यटन और मर्यादा के बीच का सेतु

मावलिननॉन्ग का यह निर्णय पर्यटन जगत के लिए एक नई नियमावली की तरह है। यह बताता है कि किसी भी स्थान को 'पर्यटन उत्पाद' बनने से पहले अपनी 'सांस्कृतिक मर्यादा' को सुरक्षित रखना चाहिए। यदि कोई पर्यटन स्थल अपनी आत्मा ही खो दे, तो वह केवल एक कंक्रीट का ढांचा बनकर रह जाएगा।

मावलिननॉन्ग ने दुनिया को दिखाया है कि 'विकास' और 'विश्राम' साथ-साथ चल सकते हैं। पर्यटकों को यह समझना होगा कि वे जिस सुंदरता को देखने आए हैं, वह उस गांव के लोगों के कठोर अनुशासन और उनके पवित्र विश्राम का परिणाम है। यदि पर्यटक उस विश्राम का सम्मान नहीं करेंगे, तो वह सुंदरता भी स्थायी नहीं रहेगी। गांव के प्रवेश मार्ग पर लगा वह छोटा सा बोर्ड—'रविवार को पर्यटकों का प्रवेश वर्जित है'—वास्तव में एक आमंत्रण है कि आप आएं, लेकिन हमारी मर्यादाओं का सम्मान करते हुए।

विश्राम का सौंदर्य

अंततः, मावलिननॉन्ग की यह कहानी केवल स्वच्छता या पर्यटन की कहानी नहीं है, बल्कि यह 'मानवीय गरिमा' की पुनर्स्थापना की गाथा है। एक ऐसी दुनिया में जहाँ हर चीज बिकाऊ है, एक छोटे से गांव ने अपनी शांति और अपनी आस्था को बेचने से मना कर दिया है। यह फैसला हमें याद दिलाता है कि मशीन की तरह चलते रहना ही जीवन नहीं है; रुकना, सांस लेना और अपने ईश्वर या अपनी आत्मा के साथ समय बिताना ही वास्तविक अस्तित्व है।

मावलिननॉन्ग ने यह सिद्ध किया है कि वह केवल 'सबसे साफ गांव' ही नहीं है, बल्कि वह 'सबसे समझदार गांव' भी है। वह एक ऐसा दर्पण है जिसमें आधुनिक सभ्यता अपनी आपाधापी देख सकती है और सीख सकती है कि कैसे अपनी जड़ों से जुड़े रहकर भी दुनिया के लिए एक आदर्श बना जा सकता है। रविवार का वह सन्नाटा मावलिननॉन्ग की गलियों में एक नई ऊर्जा भरता है, ताकि अगले छह दिन वह गांव फिर से उसी मुस्कुराहट और स्वच्छता के साथ दुनिया का स्वागत कर सके। ●

समान नागरिक संहिता

साझा कानून, साझी नागरिकता

सात दशकों से संविधान के पन्नों में सुप्त अनुच्छेद 44 आज न्यायिक टिप्पणियों के साथ पुनः चर्चा के केंद्र में है। यह लेख समान नागरिक संहिता को केवल कानूनी सुधार नहीं, बल्कि लैंगिक न्याय और राष्ट्रीय अखंडता के सेतु के रूप में देखता है।

संदीप कुमार

भारतीय लोकतंत्र के सर्वोच्च प्रांगण, जहाँ न्याय की देवी अपनी तराजू थामे संविधान की प्रहरी बनी बैठी है, वहाँ से हाल ही में उठी कुछ टिप्पणियों ने देश की वैचारिक चेतना में एक पुरानी किंतु अत्यंत ज्वलंत बहस को पुनर्जीवित कर दिया है। मुख्य न्यायाधीश की पीठ द्वारा उत्तराधिकार और वैयक्तिक विधियों में व्याप्त विसंगतियों पर की गई टिप्पणियां केवल विधिक विमर्श का हिस्सा नहीं हैं, बल्कि वे उस संवैधानिक मौन की ओर संकेत करती हैं जो पिछले सात दशकों से भारत की धर्मनिरपेक्षता और समानता के दावों को चुनौती दे रहा है। समान नागरिक संहिता का प्रश्न आज केवल एक विधिक सुधार की मांग नहीं रह गया है, बल्कि यह उस अपूर्ण सेतु के निर्माण का आह्वान है जो हमारे संवैधानिक वादों और सामाजिक यथार्थ के बीच की दूरी को पाट सके। यह एक ऐसे न्यायपूर्ण समाज की परिकल्पना है जहाँ नागरिक की पहचान उसके मत या संप्रदाय से ऊपर उठकर केवल उसकी 'नागरिकता' में समाहित हो।

अनुच्छेद 44: संविधान की वह सुप्त आकांक्षा

जब स्वतंत्र भारत के निर्माता राष्ट्र की नींव रख रहे थे, तो उनके स्वप्नों में एक ऐसे भारत की तस्वीर थी जहाँ कानून की दृष्टि में हर व्यक्ति समान हो। इसी दूरदृष्टि का परिणाम था हमारे संविधान का अनुच्छेद 44, जो राज्य को यह निर्देश देता है कि वह समस्त भारत में नागरिकों के लिए एक 'समान नागरिक संहिता' सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा। यद्यपि इसे राज्य के नीति निदेशक तत्वों की श्रेणी में रखा गया, जिसके कारण इसे न्यायालयों के माध्यम से तत्काल लागू करना अनिवार्य नहीं था, फिर भी यह उस महान संवैधानिक सोच का परिचायक है जो विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और गोद लेने जैसे नागरिक विषयों

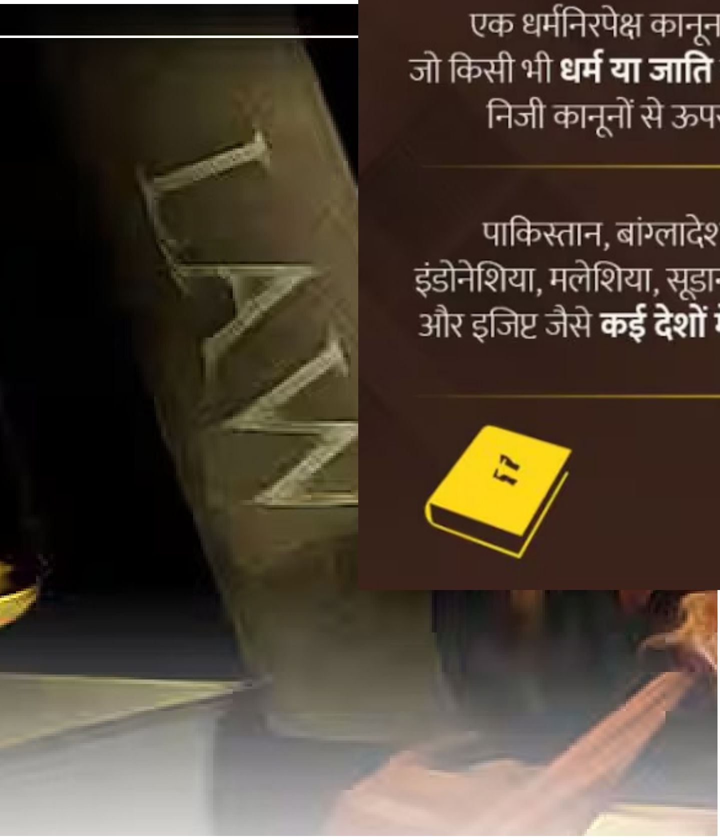

को धार्मिक रूढ़ियों के चंगुल से निकालकर एक आधुनिक विधिक ढांचे में ढालना चाहती थी।

अनुच्छेद 44 का यह निर्देश कोई आकस्मिक विचार नहीं था, बल्कि यह डॉक्टर भीमराव अंबेडकर जैसे मनीषियों की वह दूरगामी दृष्टि थी जो जानती थी कि जब तक पारिवारिक और व्यक्तिगत कानून मजहबी व्याख्याओं में उलझे रहेंगे, तब तक सामाजिक समरसता और वास्तविक समानता का लक्ष्य प्राप्त करना दुष्कर होगा। आज सात दशक बीत जाने के बाद भी यह अनुच्छेद एक 'सुप्त ज्वालामुखी' की भांति हमारी संवैधानिक नैतिकता को झकझोर रहा है।

औपनिवेशिक विरासत और विधिक बिखराव

समान नागरिक संहिता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा वह ऐतिहासिक विरासत है जो हमें ब्रिटिश शासन से प्राप्त हुई। औपनिवेशिक शासकों ने अपनी 'फूट डालो और राज करो' की नीति के तहत कभी भी भारत के पारिवारिक और सामाजिक ढांचे में हस्तक्षेप करने का साहस नहीं किया। उन्होंने आपराधिक और व्यापारिक कानूनों को तो एकीकृत कर दिया, लेकिन व्यक्तिगत विधियों को धार्मिक प्रमुखों और सदियों पुरानी परंपराओं के अधीन छोड़ दिया। इसी प्रशासनिक सुविधा और कूटनीति ने 'एंग्लो-मोहम्मडन लॉ' और 'हिंदू लॉ' जैसे बिखरे हुए विधिक स्वरूपों को जन्म दिया।

स्वतंत्रता के पश्चात हमने आपराधिक न्याय प्रणाली में तो पूर्ण समानता अपनाई, लेकिन पारिवारिक मामलों में हम आज भी उसी औपनिवेशिक विखंडन को ढो रहे हैं। विडंबना यह है कि जिसे हम आज 'पर्सनल लॉ' कहकर धार्मिक स्वतंत्रता का हिस्सा मानते हैं, उसका एक बड़ा भाग वास्तव में उन अंग्रेज न्यायाधीशों की व्याख्याओं पर आधारित है जिन्हें भारतीय समाज की सूक्ष्म संवेदनाओं का ज्ञान ही नहीं था। यह विधिक बिखराव आज हमारे आधुनिक लोकतंत्र के सम्मुख एक विसंगति बनकर खड़ा है।

लैंगिक न्याय: आधी आबादी की मूक पुकार

समान नागरिक संहिता के पक्ष में सबसे प्रबल और हृदयस्पर्शी तर्क 'लैंगिक न्याय' का है। किसी भी सभ्य समाज की प्रगति की कसौटी

यह है कि वह अपनी महिलाओं के साथ कैसा व्यवहार करता है। वर्तमान में प्रचलित विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों का गहन विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि उनमें उत्तराधिकार, संपत्ति के अधिकार, विवाह विच्छेद और भरण-पोषण जैसे विषयों पर महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव की गहरी लकीरें खिंची हुई हैं।

चाहे वह विरासत में मिलने वाला असमान हिस्सा हो, या तलाक की कठिन और अपमानजनक प्रक्रियाएं, या फिर बच्चों के संरक्षण का अधिकार—अनेक व्यक्तिगत कानूनों में स्त्रियां आज भी दोयम दर्जे की नागरिक बनी हुई हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम से लेकर शायरा बानो के ऐतिहासिक फैसलों तक बार-बार यह रेखांकित किया है कि संवैधानिक समानता की गारंटी धार्मिक विसंगतियों की बलि नहीं चढ़ाई जा सकती। मुख्य न्यायाधीश की हालिया टिप्पणियां इसी न्यायिक परंपरा का विस्तार हैं, जो यह स्पष्ट करती हैं कि एक आधुनिक संवैधानिक लोकतंत्र अनिश्चितकाल तक ऐसी व्यवस्थाओं को सहन नहीं कर सकता जो केवल लिंग के आधार पर अधिकारों का हनन करती हों।

राष्ट्रीय एकता और साझा नागरिकता का स्वप्न

समान नागरिक संहिता का कार्यान्वयन केवल कानूनी एकरूपता का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह 'राष्ट्रीय एकता' और 'अखंडता' को सुदृढ़ करने का एक महायज्ञ है। जब किसी राष्ट्र के नागरिक विवाह और संपत्ति जैसे बुनियादी सामाजिक विषयों पर अलग-अलग कानूनों से संचालित होते हैं, तो वह उनकी साझा नागरिक पहचान को कमजोर करता है। एक समान संहिता यह सुनिश्चित करेगी कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक, हर भारतीय नागरिक कानून के सम्मुख एक समान धरातल पर खड़ा हो।

साझा नागरिकता का विचार तब तक अधूरा है जब तक हमारी विधिक पहचान हमारे धर्म के आधार पर बंटी हुई है। जिस प्रकार भारतीय दंड संहिता बिना किसी भेदभाव के हर अपराधी को समान दंड का विधान करती है, उसी प्रकार एक साझा नागरिक संहिता भी हर नागरिक को समान गरिमा और अधिकार प्रदान करेगी। यह विधिक समरसता अंततः उस सांप्रदायिक तनाव को भी कम करने में सहायक होगी जो अक्सर 'तुष्टीकरण' या 'भेदभाव' के आरोपों के बीच पनपता है।

विधिक सरलता और न्याय की सुलभता

भारत की वर्तमान न्यायिक व्यवस्था पहले से ही लंबित मुकदमों के बोझ तले दबी हुई है। व्यक्तिगत कानूनों की विविधता इस जटिलता को और अधिक बढ़ा देती है। जब अदालतों के सामने अंतर-धार्मिक विवाह, उत्तराधिकार के विवाद या दत्तक ग्रहण के मामले आते हैं, तो न्यायाधीशों को विभिन्न धार्मिक ग्रंथों और परंपराओं की परस्पर विरोधी व्याख्याओं के भंवर में फंसना पड़ता है। इससे न केवल न्याय में विलंब होता है, बल्कि निर्णयों में

एकरूपता का अभाव भी बना रहता है।

एक स्पष्ट और व्यापक समान नागरिक संहिता इन कानूनी उलझनों को समाप्त कर देगी। इससे कानूनों की व्याख्या सरल होगी, वकीलों और वादियों के लिए प्रक्रियाएं सुबोध होंगी और न्याय प्रदान करने की गति में तीव्रता आएगी। विधिक स्पष्टता किसी भी लोकतंत्र की कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए अनिवार्य है और समान नागरिक संहिता इस दिशा में एक क्रांतिकारी कदम सिद्ध हो सकती है।

विविधता का सम्मान और बहुलवाद का संरक्षण

समान नागरिक संहिता के विरोध में प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि इससे भारत की सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता संकट में पड़ जाएगी। आलोचकों का मानना है कि व्यक्तिगत कानून किसी समुदाय की विशिष्ट पहचान और अनुच्छेद 25 के तहत दी गई धार्मिक स्वतंत्रता का अभिन्न अंग हैं। यह एक संवेदनशील प्रश्न है जिसे नकारा नहीं जा सकता। भारत की सुंदरता उसकी अनेकता में है और कोई भी सुधार इस विविधता को नष्ट करने की कीमत पर नहीं होना चाहिए।

परंतु, यहाँ यह समझना आवश्यक है कि 'समानता' और 'एकरूपता' के बीच एक महीन अंतर होता है। समान नागरिक संहिता का उद्देश्य धार्मिक रीति-रिवाजों, पूजा पद्धतियों या खान-पान की विविधता को समाप्त करना नहीं है। इसका लक्ष्य केवल उन नागरिक अधिकारों में समानता लाना है जो मानवीय

गरिमा और संवैधानिक नैतिकता से जुड़े हैं। गोवा का उदाहरण हमारे सामने है, जहाँ एक समान संहिता दशकों से लागू है और वहाँ की विविध धार्मिक संस्कृतियां आज भी फल-फूल रही हैं। चुनौती यह है कि हम एक ऐसा 'भारतीय मॉडल' तैयार करें जो अनिवार्य संवैधानिक अधिकारों की रक्षा भी करे और साथ ही उन सांस्कृतिक परंपराओं का सम्मान भी करे जो समानता के सिद्धांतों से नहीं टकरातीं।

सुधार की राह: संवाद और संवेदनशीलता

समान नागरिक संहिता की ओर बढ़ने का मार्ग अचानक लगने वाले किसी झटके जैसा नहीं होना चाहिए। इसके लिए व्यापक सामाजिक संवाद, राजनीतिक सहमति और सभी हितधारकों के साथ गहन विमर्श की आवश्यकता है। इसे थोपने के बजाय, हमें व्यक्तिगत कानूनों के भीतर सुधार की प्रक्रियाओं को प्रोत्साहित करना चाहिए। पिछले कुछ वर्षों में हमने देखा है कि किस प्रकार तीन तलाक जैसी कुप्रथाओं का अंत हुआ और किस प्रकार हिंदू उत्तराधिकार कानूनों में पुत्रियों को समान अधिकार दिए गए। ये क्रमिक सुधार दर्शाते हैं कि समाज परिवर्तन के लिए तैयार है।

वास्तविक समाधान एक ऐसी संहिता तैयार करने में है जो संकीर्ण पहचानों से ऊपर उठकर मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता दे। विधि आयोग और विधायिका को मिलकर एक ऐसा प्रारूप तैयार करना चाहिए जो समावेशी हो। हमें एक ऐसी विधिक संस्कृति विकसित करनी होगी जहाँ धर्म व्यक्ति का निजी विषय बना रहे और कानून नागरिक के सार्वजनिक और पारिवारिक अधिकारों का रक्षक हो।

समय की पुकार और संवैधानिक दायित्व

सात दशक पूर्व हमारे संविधान निर्माताओं ने जिस 'दीपक' को अनुच्छेद 44 के रूप में प्रज्वलित किया था, उसकी लौ आज भी हमें रास्ता दिखा रही है। मुख्य न्यायाधीश की टिप्पणियों ने राष्ट्र को पुनः याद दिलाया है कि संवैधानिक वादों को अनंत काल तक प्रतीक्षा की सूची में नहीं रखा जा सकता। एक आधुनिक, प्रगतिशील और विकसित भारत का निर्माण तब तक पूर्ण नहीं होगा जब तक हमारी विधिक व्यवस्था के किसी कोने में भेदभाव का अंधकार बना रहेगा।

समान नागरिक संहिता कोई राजनीतिक नारा नहीं, बल्कि न्याय का वह महाद्वार है जिससे होकर सुदृढ़ लोकतंत्र का रास्ता गुजरता है। यह समय है कि हम उन सभी आशंकाओं और पूर्वाग्रहों को पीछे छोड़ें जो हमें विधिक समरसता की ओर बढ़ने से रोकते हैं। एक साझा कानून, एक साझा नागरिकता और एक साझा भविष्य—यही वह मंत्र है जो भारत को एक आधुनिक महाशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करेगा। अब समय आ गया है कि हम संवैधानिक वादे को हकीकत में बदलें और एक ऐसे भारत का निर्माण करें जहाँ कानून की छाया में हर नागरिक, विशेषकर हर महिला, स्वयं को सुरक्षित और समान महसूस कर सके। •

हंसिका की शादी में दरार!

बॉलीवुड और साउथ सिनेमा की चुलबुली अदाकारा हंसिका मोटवानी इन दिनों अपनी पर्सनल लाइफ को लेकर सुर्खियों में हैं। खबरों की मानें तो उनकी शादीशुदा जिंदगी में सब कुछ ठीक नहीं चल रहा। चर्चा है कि बिजनेसमैन पति सोहेल खाटुरिया से उनका रिश्ता अब टूटने की कगार पर पहुंच चुका है। बी-टाउन की गलियों में फुसफुसाहट है कि दोनों के बीच पिछले कुछ समय से लगातार अनबन चल रही थी। हालांकि इस खबर पर अभी तक हंसिका या सोहेल की ओर से कोई आधिकारिक बयान नहीं आया है। मगर गॉसिप गलियारों में सवाल गूंज रहा है—क्या ये रिश्ता सचमुच खत्म हो गया, या अभी कहानी में कोई नया ट्विस्ट बाकी है? ●

WEBSOFY
work is worship

Your complete IT & Digital Solution Partner

Our Expertise

- Website Design & Development
- E-Commerce & Mobile Apps
- Digital Marketing (SEO, SMM, PPC)
- Cloud Hosting & IT Solutions
- Custom Software Development

Why Websofy?

- Modern, Responsive Designes
- Secure & Scalable Technology
- On-Time Project Delivery
- 24x7 Client Support
- Affordable and High-Quality

Transforming Ideas into Digital Reality.

Biometric

CCTV Services

Audio/Video Solutions

Network Security

ISO 9001:2015 Certified · ISO 27001:2013 Certified · Empanelled with UP Electronics · GeM Government e Marketplace

Contact us for more information

8953777346, 9250687597
9335785354, 73099 79797

info@websofy.com
www.websofy.com

VANMPLY®

— 100% Termite Proof Ply —

1st INDIA'S VPT Techonology Plywood & LIFETIME WARRANTY

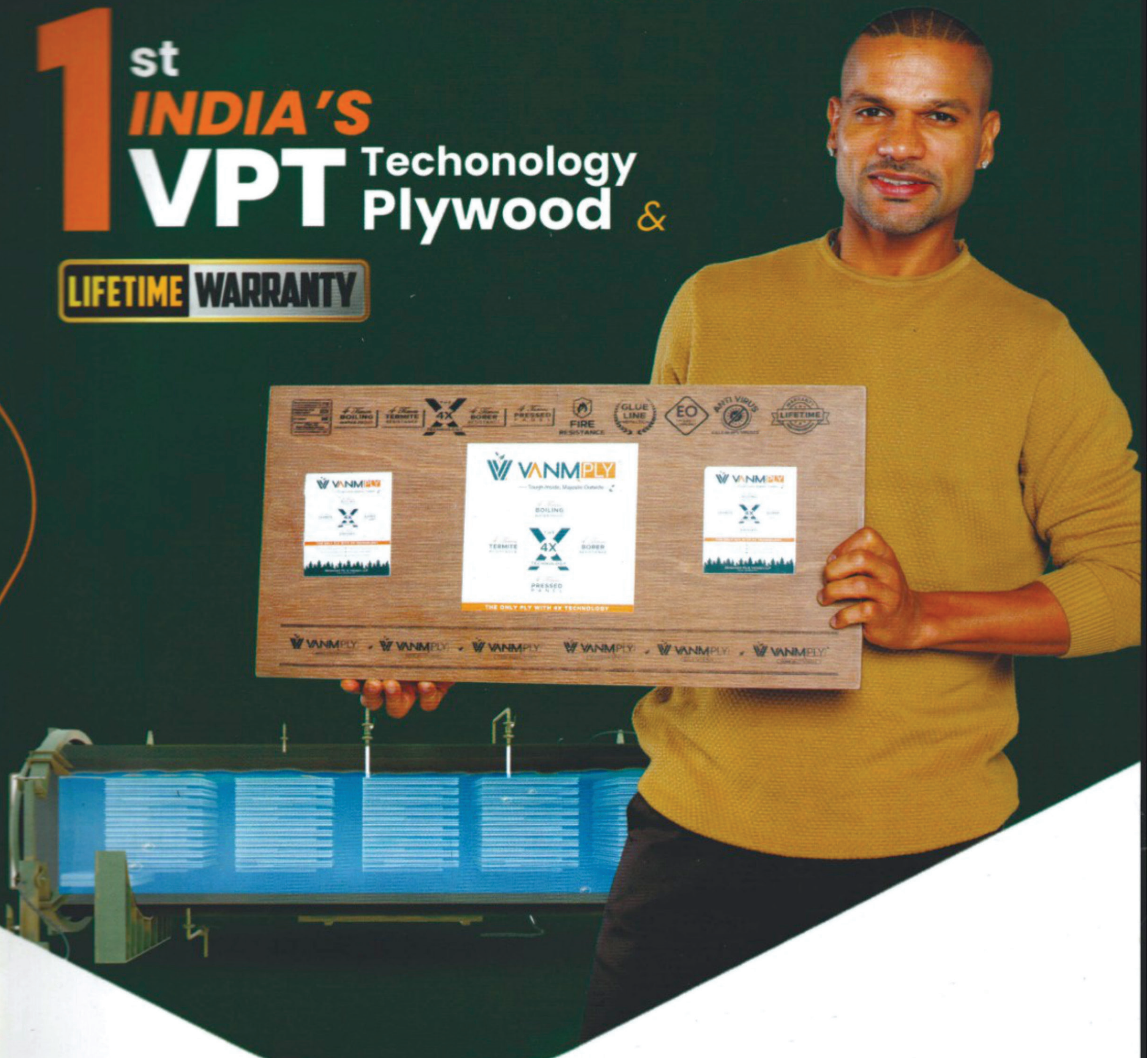

VANMPLY & VENEERS LLP

Factory: Survey No. 60/25-60/35, Near VKT Pharma, Chillapeta Rajam Village Road, Ranasthalam Mandal, Srikakulam, Andhra Pradesh-53240

For Trade Enquiries: 8894466944 | Visit: www.vanmply.com

Follow us on vanmply